॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक ११

वार्षिक ८०/– **एक प्रति १०/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/–
आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ११०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ५००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

'विवेक-ज्योति' की मूल्य-वृद्धि सूचना

सम्माननीय पाठको ! 'विवेक ज्योति' कई वर्षों से घाटे में ही चलती आ रही है। पाठकों पर अधिक भार न पड़े, इसलिए हमने पिछले वर्ष बहुत कम मूल्य-वृद्धि की थी। सभी सामग्रियों – कागज, मुद्रण के गुणवत्ता सुधार और डाक, वेतन आदि की दरों में पर्याप्त वृद्धि से 'विवेक-ज्योति' पर आर्थिक भार बहुत अधिक पड़ रहा है। इसलिये हम इसका थोड़ा सा मूल्य बढ़ाने जा रहे हैं। अब जनवरी-२०१५ से नयी मूल्य-राशि होगी – **वार्षिक शुल्क रु. १००/-, एक प्रति रु. १२/-, पाँच वर्षों के लिये रु. ४६०/- और आजीवन शुल्क (२० वर्षों के लिये) – रु. १७००/-, संस्थाओं के लिये वार्षिक रु. १४०/- और पाँच वर्षों के लिये रु. ६५०/-।** आशा है, आप हमारा पूर्ववत सहयोग करते रहेंगे। - **स्वामी स्थिरानन्द, व्यवस्थापक, 'विवेक-ज्योति' कार्यालय।**

नवम्बर माह के जयन्ती और त्योहार

११	दीपावली
१२	गोवर्धन पूजा
१३	भाईदूज
१४	बाल-दिवस
१७	छठ पूजा
२३	स्वामी सुबोधानन्द
२५	गुरुनानक जयन्ती, स्वामी विज्ञानानन्द

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

विवेक-ज्योति का जून २०१५ का अंक मिला, इसके पूर्व भी बीच-बीच में अंक मिलते रहे हैं। आपके इस समुदार सौजन्य के प्रति हार्दिक आभार ...। पत्रिका के प्रस्तुत अंक का मुखपृष्ठ अत्यन्त अभिराम, आकर्षक एवं ऐतिहासिक है, जिस पर स्वामी विवेकानन्द जी की १५०वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित भारत-भ्रमण यात्रार्थ पुरस्कृत 'स्वामी विवेकानन्द रथ' का दर्शनीय दृश्य विराजमान है। पाँच घोड़ों से वाहित इस रथ में स्वामी विवेकानन्द की दो छबियाँ अपनी पूर्ण गरिमा के साथ विद्यमान हैं, जो पाठक एवं दर्शक के चित्त पर प्रसन्न प्रभाव छोड़ने वाली हैं। आपका यह सम्पादकीय सारस्वत अनुष्ठान भारतीय मनीषा एवं विश्व समाज को एक अभिनव उपहार है। इसी प्रकार आप 'विवेक-ज्योति' के प्रत्येक अंक से स्वामी विवेकानन्द के जीवन प्रसंगों एवं उनसे जुड़े महापुरुषों तथा घटना-वृत्तों से सम्बन्धित चित्र पत्रिका में देते रहकर इसकी गरिमा-गौरव को गतिमान बनाये रखें।

प्रस्तुत अंक के अन्त:पृष्ठों में आपने स्वामी विवेकानन्द एवं अन्य सन्दर्भों से सम्बन्धित अनेक मनीषी विद्वानों के लेख-संस्मरण आदि प्रकाशित कर धर्म-अध्यात्म, संस्कृति, समाज-साहित्य तथा मानवता के संपोषणार्थ बहुविध ज्योतिफूल खिलाये हैं। अनेक रोचक रचनाओं, प्रेरक कथाओं तथा लघु कथाओं से जिज्ञासु पाठक के आस्वादन में श्रीवृद्धि हुई है। अंक में 'विविध भजन' शीर्षक के अन्तर्गत 'मैं कब हरिदर्शन पाऊँगा' शीर्षक रचना से आपके कवि स्वरूप का भी दर्शन मिला। कवित्व, लेखक-संपादक की सहृदयता में प्राण-प्रतिष्ठा करता है। यह 'स्वर्णे गन्धः' सुयोग है।

महामना मदन मोहन मालवीय जी के जीवन-वृत्त में स्वामी विवेकानन्द के विचारों को साकार करने का शुभदर्शन आपके सम्पादकीय बोध-दृष्टि का स्वत: प्रमाण है। पूर्व अंक से क्रमश: यह लेख अतीव उपयोगी है। राष्ट्रीय स्वाभिमान-अस्मिता एवं विश्व-मानवता को विमल विवेक-ज्योति प्रदान करने वाला यह महान अनुष्ठान अभिनन्दनीय, वन्दनीय, उल्लेखनीय एवं अविस्मरणीय है। इस महत् सत्कार्य हेतु शतशः साधुवाद बधाई।

साभिवादन, सादर सैदव आपका,

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश', सम्पादक 'सहकार' पत्रिका, अम्बेदकर नगर, (उत्तर प्रदेश)

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में – पृ. ५६३

वर्ष ५३ नवम्बर २०१५ अंक ११

काली वन्दना

काली-क्रोधकराल-कालभयदोन्माद-प्रमोदालया,
नेत्रोपान्तकृतान्त-दैत्यनिबहा प्रोद्दामदेहाभया ।
पायाद्वो जयकालिका प्रवलिका हुंकारघोरानना,
भक्तानामभयप्रदा विजयदा विश्वेशसिद्धासना ।।

– जो क्रोधित होकर करालकाल को भय प्रदान करनेवाली उग्र मूर्ति धारण कर प्रसन्नता से उन्मत्त हो उठती हैं, जो अपने दृष्टि से, कटाक्ष से दानवों का संहार करती हैं, जिनकी भयंकर मूर्ति भी भक्तों को अभय प्रदान करती है, हुंकार की ध्वनि से परिपूर्ण जिनका मुखमंडल अत्यन्त भयंकर है, जो विश्वेश्वर भगवान शिव को ही अपना सिद्धासन बनाई हुई हैं। वे विजयप्रदा जगदम्बा माँ काली हमारी रक्षा करें।

त्वं काली त्वञ्च तारा त्वमसि गिरिसुता सुन्दरी भैरवी त्वं,
त्वं दुर्गा छिन्नमस्ता त्वमसि च भवना त्वं हि लक्ष्मीः शिवा त्वं ।
धूमा मातंगिनी त्वं त्वमसि च बगला मंगलादिस्तवाख्या
क्षन्तव्यो मेऽपराधः प्रकटितवदने कामरूपे कराले ।।

– हे माँ ! तुम्ही काली, तारा, पार्वती, सुन्दरी भैरवी, दुर्गा, छिन्नमस्ता, लक्ष्मी, शिवा, धूमा, मातंगिनी, बगला और मंगला हो। हे माँ कालिका ! तुम मेरे अपराधों को क्षमा करो और हम सबका मंगल करो।

पुरखों की थाती

मक्षिका व्रणमिच्छन्ति धनमिच्छन्ति पार्थिवाः ।
नीचाः कलहमिच्छन्ति शान्तिमिच्छन्ति साधवः ।।४७५

– मक्खियाँ सड़े-गले घावों को ढूँढ़ती हैं, राजा लोग धन की इच्छा करते हैं, दुष्ट लोग लड़ाई-झगड़े की ताक में रहते हैं और साधु या सज्जन लोग शान्ति तथा सद्भाव की कामना करते हैं।

मत्तः प्रमत्तश्चोन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ।
लुब्धो भीरुस्त्वरायुक्तः कामुकश्च न धर्मवित् ।।४७६

– अहंकारी, लापरवाह, पागल, थका, क्रोधी, भूखा, लोभी, डरपोक, जल्दबाज और कामुक व्यक्ति कभी धर्मज्ञ नहीं हो सकता।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् कार्यमन्यद् दुरात्मनाम् ।।४७७

– महात्मा लोगों के मन में जो होता है, वही बोलते और वही करते भी हैं। परन्तु दुर्जनों के मन में रहता कुछ है, कहते कुछ हैं और कार्यरूप में कुछ और ही दीख पड़ता है।

मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति नाऽनलो याति शीतताम् ।।४७८।।

– स्वाभिमानी व्यक्ति मर-मिटता है, परन्तु दीनता स्वीकार नहीं कर सकता। जिस प्रकार अग्नि बुझ भले ही जाय, परन्तु जब तक जलेगी, तब तक ठण्डी नहीं हो सकती।

मणिर्लुठति पादेषु काचः शिरसि धार्यते ।
यथैवास्ते तथैवास्तां काचः काचो मणिर्मणिः ।।४७९।

– चाहे मणि को पैरों के नीचे डाल दिया जाय और काँच को सिर पर धारण कर लिया जाय, तो भी जो जैसा है, वह वैसा ही रहेगा। काँच काँच ही रहेगा और मणि मणि ही रहेगी।

विविध भजन

भक्ति-मुक्ति-दायिनी भयहरणि कालिका

गोस्वामी तुलसीदास

जय जय जगजननि देवि, सुर-नर-मुनि-असुरसेवि,
भक्ति-मुक्ति-दायिनी भयहरणि कालिका ।।
मंगल-मुद-सिद्धि सदनि, पर्वशर्वरीश-वदनि,
ताप-तिमिर-तरुण-तरणि-किरणमालिका ।।
वर्म-चर्म कर-कृपाण शूल-शैल धनुष-बाण,
धरणी-दलनी दानव-दल-रण करालिका ।।
पूतना पिशाच प्रेत, डाकिनि-शाकिनि समेत,
भूत-ग्रह-बेताल-खग, मृगालि-जालिका ।।
जय महेश-भामिनी, अनेक-रूप नामिनी,
समस्त लोक स्वामिनी, हिमशैल बालिका ।।
रघुपति-पद परम प्रेम, 'तुलसी' यह अचल नेम,
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि, प्रणत-पालिका ।।

मन रामकृष्ण गुण गाओ

सुखद राम पाण्डेय, लखनऊ

मन रामकृष्ण गुण गाओ ।
इनके पद में चित्त लाओ ।।
ये ही तुम्हारे बन्धु सखा, माता-पिता तुम्हारे ।
इन्हीं के पद-कमलों में बसते हैं रिश्ते सारे ।।
उम्र गँवाओ मत, नत सिर हो इनकी शरण में जाओ ।।
इनके सुमिरन से उपजेगी, परम शान्ति सुखदायी,
जागेगा वैराग्य, विवेकाधीन बुद्धि की छाई ।।
बैठ ध्यान में, इनकी महिमा के समीप आ जाओ ।।
प्रशमित होते ताप जहाँ, जग के बन्धन खुल जाते,
दिव्य दृष्टि का दान प्राप्त कर अघ सारे धुल जाते ।
यहाँ करो सर्वस्व निछावर, ज्ञान-भक्ति पा जाओ ।।

एक बार माँ मुझको भी ...

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

जब जीवन पथ हो अँधियारा, जब दिखे न कोई किनारा ।
तब हे जननी आ ज्योति जला, तुम मुझको मार्ग दिखा देना ।।
जब इन्द्रिय-ग्राह लगे ग्रसने, जब अहं-फणि आए डँसने,
तब हे वात्सल्यमयी अम्बे, उनसे मुझको तू बचा लेना ।।
जब लोभ-क्रोध-काम-अहंकार, उद्यत हों करने विसंहार ।
तब हे करुणामयी माँ मेरी, अपने आँचल में छिपा लेना ।।
इस जग से मुझे नहीं आशा, तुझसे केवल यह अभिलाषा ।
बस एकबार माँ मुझको भी, कह पुत्र अंक लगा लेना ।।
अपना दिव्य दर्शन देकर, निज स्नेह-सुधांक में माँ लेकर ।
स्वभक्ति-प्रेम की गंगा में, नहलाकर शुद्ध बना देना ।।
हे माँ सारदे सुनो मेरा, काटो भव-बन्धन का फेरा ।
कर आलोकित तन-मन मेरा, यह जीवन धन्य बना देना ।।

चल मन हरि भजन की ओर

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

चल मन हरि भजन की ओर ।
बीती रजनी होए भोर ।।
जग का चिन्तन ऐसा बन्धन जिसका ओर न छोर ।
बाँधे जो तन-मन का पल-पल ऐसी गाँठ कठोर ।।
बन्धन ढीला कभी न होए, खुद ही खुद का बोझा ढोए ।
अन्त समय पछताए रोए, ऐसी दुर्गति घोर ।।
हरि भजन हृदय का मोती, जिसकी चमक न फीकी होती ।
हरि भजन पारस मणि ज्योति, मिटे अँधियारे का छोर ।।
हरिभजन मेटे दुख-द्वन्द्व, हरिभजन काटे भव-फन्द ।
हरिभजन मुक्ति का द्वार, माँगे जो कर जोर ।।

सम्पादकीय

सदानन्दमयी माँ काली की आराधना

दीपावली की रात्रि में अमावस्या की निशा में कई स्थानों पर माँ काली की पूजा होती है। दीपावली की रात बहुत से लोग लक्ष्मीजी की पूजा भी करते हैं। किन्तु जितनी धूमधाम और उत्साह से दुर्गापूजा होती है, उतने उत्साह से कालीपूजा नहीं होती। अधिकांश लोग तो, काली के विकराल रूप को देखकर ही डर जाते हैं। साहित्य में 'क' अक्षर कर्कश ध्वनि का द्योतक है। ऐसी स्थिति में सामान्य लोग की मानसिकता सहज ही बोधगम्य है। ईश्वर के सात्त्विक वैष्णव उपासकों को तो खड्ग-खप्परधारी, मुण्डमाली, रुधिरमयी लम्बी जिह्वा निकाली हुई, रौद्ररूपिणी माँ काली का रूप तो भयावह ही प्रतीत होता है। उसमें भी यदि किसी चित्र में डाकिनी-शाकिनी, प्रेतिनी और शृगालिनी का चित्रण हो, तब तो कहना ही क्या है ! भय कई गुना बढ़ जाता है। यदि रात में सोते समय ऐसे रूप की स्मृति हो जाय, तब तो उनकी मनोवस्था के बारे में पूछो ही मत। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। माँ काली के रूप की ऐसी धारणा ठीक नहीं है।

माँ काली का स्वरूप तो सदा आनन्दमय, मंगलमय और वात्सल्यमय है। माँ के इस विकराल रूप में भी सौम्यता, कल्याण भावना, कर्कशता में भी मधुरता, कठोरता में मृदुता, रौद्रमय क्रोधमुद्रा में भी प्रेम-भावना है। सदा अपनी सन्तानों के प्रति मंगलदृष्टि, शुभकामना और स्नेहवृत्ति है।

श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – 'पानी दूर से देखने पर नीला दिखता है, लेकिन पास में जाकर हाथ में उठाकर देखो, तो उसका कोई रंग ही नहीं है।'' ठीक वैसे ही दूर से देखने पर भले ही काली भयप्रद लगें, किन्तु उनके पास जाने पर उनके दिव्य स्वरूप से परिचित होने पर उनसे डर नहीं लगता, बल्कि उनसे प्रेम होने लगता है। उनके स्नेह और कृपा की अनुभूति होने लगती है। माँ काली की इसी महिमा का बोध कर बंगभूमि के सन्त कवि कमलाकान्त ने अपनी भजन-सरिता की निर्झरिणी को प्रवाहित कर गाया – 'सदानन्दमयी काली महाकालेर मनमोहिनी। तुमी आपनी नाचो आपनी गाओ आपनी दाओ माँ करताली।।' – हे सदा आनन्द में रहने वाली माँ काली, तुम महाकाल शिव के मन को मुग्ध करने वाली हो। सचमुच ही माँ सर्वदा आनन्दमयी हैं और विरागी श्मशानवासी भगवान को भी अपनी ओर आकर्षित करती हैं। नित्य आनन्द की खोज या उसकी प्राप्ति की प्रत्याशा में निरत व्यक्ति को सदानन्दमयी काली की आराधना और उनसे याचना करनी चाहिए।

माँ का भयंकर रूप क्यों?

माँ काली का ऐसा रूप क्यों हुआ, इस घटना का मैं संक्षिप्त उल्लेख करता हूँ। देव-असुर संग्राम में शुम्भ और निशुम्भ से देवगण पराजित हो गए। असहायावस्था में देवों ने माता का आह्वान किया। क्योंकि पूर्व में महिषासुर का वध करने के बाद माँ ने संकट में सहायता करने का आश्वासन दिया था। देवों के आह्वान पर माँ प्रकट हुईं और शुम्भ-निशुम्भ के दूत चण्ड-मुण्ड का वध कर दिया। शुम्भ बड़ी शक्तिशाली सेना लेकर युद्ध करने आया। दानव सेना को देखकर माँ चण्डिका ने घंटा-नाद किया। असुरों ने चारों ओर से देवी चण्डिका को घेर लिया। इसके बाद असुरविनाश हेतु विभिन्न देवों – ब्रह्मा-विष्णु-शिव-इन्द्रादि की विभिन्न शक्तियाँ देवी के पास गयीं। उसके बाद शिवजी ने देवशक्तियों से आवृत देवी चण्डिका को दानवों का संहार करने को कहा। तब देवी के शरीर से परम उग्र चण्डिका शक्ति प्रकट हुई। घनघोर युद्ध आरम्भ हुआ। माँ दैत्यों का वध करती रहीं। लेकिन रक्तबीज को मारने पर जितने रक्त जमीन पर गिरते, उतने रक्तबीज बन जाते। असंख्य राक्षस उत्पन्न हो गए। यह देखकर देवगण दुखित हुए। तब माँ ने दैत्य पर क्रोध किया। क्रोध से उनकी ललाट से काली देवी प्रकट हुई और रक्तबीज को मार कर अपनी विशाल जिह्वा से जमीन पर रक्त गिरने के पहले ही पी गईं। अन्त में दानव वंश का विनाश कीं और देवों को अभय प्रदान कीं। असुरों के विनाश हेतु माँ का रौद्र विकराल रूप है, देवों के लिए नहीं। अत: असुरवृत्ति के लोग माँ से डरते हैं, देववृत्ति की उनकी सन्तानें तो माँ की गोद में खेलती हैं, उनके इस रूप से प्रसन्न होती हैं कि अब असुरों का विनाश हो जाएगा। अत: माँ काली के विकराल कराल रूप से डरें नहीं, बल्कि प्रसन्न हों।

कौन डरेगा ऐसी माँ से?

मान लीजिए कोई लुटेरा सौम्य माता के पुत्र को मारने लगे, और वही माँ क्रोध में तलवार से उस लुटेरे का वध

कर पुत्र को बचा ले, तो क्या, वह बच्चा अपनी माँ के उस विकराल रूप से डरेगा? नहीं डरेगा। ठीक ऐसी ही हैं हमारी काली माँ ! जो दूर से दुष्टों के दमनार्थ विकराल रूप में क्रोधी दिखती हैं, किन्तु समीप जाओ, तो केवल करुणा और स्नेह का वर्षण हो रहा है।

माँ प्रगटो मेरे हृदि–रण में !

संक्षेपत: यह सिद्ध होता है कि माँ काली की उत्पत्ति दानवों का विनाश करने एवं देवों की रक्षा के लिए हुआ था। उस समय देवता बाह्य राक्षसों से त्रस्त थे। हम भी त्रस्त हैं, किन्तु हमारे दानव बाहर नहीं, अपितु भीतर हैं। हमारे हृदय की रणभूमि में देव-दानववृत्तियों का निरन्तर युद्ध चल रहा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी दानव और अहंकार रूपी महादैत्य ने हमारे जीवन को अशान्त बना दिया है। हमारे विमल शुद्ध चित्त में दुर्वासनाओं के कीचड़ डालकर हमारे स्वभाव को कलुषित कर दिया है। इतना ही नहीं, हमारे दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूप को आवृत कर हमें दुखी और भ्रमित कर दिया है। देवों के समान हम भी अपनी सीमित शक्ति और पुरुषार्थ से इन महादैत्यों पर विजय पाने में असमर्थ हैं, अत: हमें असुरविनाशिनी अन्तर्यामिनी अनन्त शक्तिमयी माँ से शरणागत होकर प्रार्थना करनी चाहिए – ''माँ ! हम अपने अन्तर्बाह्य दोनों शत्रुओं से भीषण आक्रान्त हैं। इन रिपुओं ने हमें तुम्हारी करुणा की छत्रछाया से वंचित कर दिया है। माँ, तुम हमारे हृदय में आविर्भूत होकर इनका नाश करो और हमें अपनी कृपांक की सानन्द अनुभूति कराओ। हे भवार्णवतारिणी माँ ! हमें इस दुस्तर भवसिन्धु से पार कर शाश्वत मुक्ति प्रदान करो।'' ऐसी प्रार्थना से माँ हमारे अन्त:करण में प्रकट होकर हमारे हृदयस्थ दानववृत्तियों का नाश कर देंगी। हमें नित्य अभय पद, शाश्वत सुख-शान्ति और आनन्द प्रदान करेंगी।

काली के विभिन्न रूप – तन्त्रसार में परमाद्या जगदम्बा के दस रूपों का उल्लेख मिलता है –

कालिका च महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्या: सर्वतन्त्रेषु गोपिता।।

इनमें अनन्तरूपिणी काली के प्रमुख आठ रूप हैं – दक्षिणा काली, स्पर्शमणी काली, संततिप्रदा काली, सिद्धि काली, कामकला काली, हंसकाली तथा गुह्य काली। इन अष्टकालियों में दक्षिणा काली की महानता प्रथित है। श्रीरामकृष्ण देव की लीलाभूमि दक्षिणेश्वर में दक्षिणाकाली की ही मूर्ति प्रतिष्ठित है। दक्षिणाकाली यमत्रासरक्षिणी यमभयनाशिनी हैं। इनके भक्तों को यमयातना नहीं होती। ये भक्तों के प्रति अपनी उदारता, वरप्रदा, प्रेमवर्षिणी और अभयदायी स्वरूप के कारण लोकप्रथित हैं।

काली ब्रह्मस्वरूपिणी ब्रह्मपददायिनी हैं

काल की अधिष्ठात्री काली हैं। काली अनादि अनन्ता ब्रह्मस्वरूपिणी महाकाल विजयिनी हैं। दुष्ट-दानव विनाशिनी माँ काली हैं। दुर्बुद्धिनाशिनी और सन्मतिदायिनी माँ काली हैं। मानव के अन्त:करण में कुंडली मारकर बैठे अहंकार-फणि को मारनेवाली काली हैं। काली मनुष्य के चित्त में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर रूपी असुरों की संहारिणी हैं। राग-द्वेष-मात्सर्यरहित श्मशान चित्त में हृदय सिंहासन पर विराज करनेवाली काली हैं। दानववृत्तिनाशिनी और देववृत्ति प्रदायिनी माँ काली हैं। संकट से उद्धारकारिणी काली हैं। जीवन के घनान्धकार में ज्ञानालोक प्रदान कर उज्ज्वल-पथ प्रदर्शिनी हैं। साधक-विघ्न विनाशिनी और उन्हें सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं। काली शक्तिदायिनी हैं। ज्ञान-भक्ति-मुक्ति प्रदायिनी काली हैं। ब्रह्मस्वरूपिणि और ब्रह्मपद प्रदायिनी माँ काली हैं। सच्चिदानन्दमयी काली परमानन्द प्रदान करने वाली हैं। भक्तों की यम-यातनाविनाशिनी हैं। काली हमारी प्राणशक्ति और हमारी प्रेममयी वात्सल्यमयी माँ हैं, जो अहर्निश अपनी गोद में लेकर हमारी सब प्रकार से रक्षा करते हुए हमें हमारे जीवन लक्ष्य की ओर अग्रसर कर रही हैं।

काली हमार प्राण रे !

मातृभक्त कवि कमलाकान्त ने अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए कहा था – इस जग में कुछ सार नहीं है, केवल श्यामा सार रे। ज्ञान काली ध्यान काली, काली प्राण हमार रे।। इसीलिए तो स्वामी तपानन्द जी ने माँ के दोनों चरणों को ही अपनी शरणस्थली बनाते हुए गाया – 'ओ दुटी चरण सार दीनेर शरण नाहीं गो आर।।' – हे माँ ! तुम्हारे दोनों चरण ही हमारे जीवन की सार वस्तु है। इस दीन का दूसरा कोई शरणस्थल नहीं है।

अत: हम भी पूर्ण समर्पण के साथ सदानन्दमयी माँ काली के चरण-कमलों का आश्रय लें, उनसे प्रार्थना करें और उनकी कृपा प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य बनावें।

○○○

एकता की आवश्यकता

स्वामी विवेकानन्द

इच्छाशक्ति ही जगत में अमोघ शक्ति है। ... वह कौन-सी वस्तु है, जिसके द्वारा कुल चार करोड़ अंग्रेज पूरे तीस करोड़ भारतवासियों पर शासन करते हैं? इस प्रश्न का मनोवैज्ञानिक समाधान क्या है? यही, कि वे चार करोड़ लोग अपनी-अपनी इच्छाशक्ति को एकत्र कर देते हैं अर्थात् शक्ति का अनन्त भण्डार बना लेते हैं और तुम तीस करोड़ लोग (भारत की तत्कालनी जनसंख्या) अपनी-अपनी इच्छाओं को एक दूसरे से पृथक् किए रहते हो। बस यही इसका रहस्य है कि वे संख्या में कम होकर भी तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं। अत: संगठन ही शक्ति का मूल है। यदि भारत को महान बनाना है, उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है, तो इसके लिए आवश्यकता है – संगठन की, शक्ति-संग्रह की और बिखरी हुई इच्छाशक्ति को एकत्र करके उसमें समन्वय लाने की।

अथर्ववेद संहिता का एक विलक्षण मन्त्र याद आ रहा है, जिसमें कहा गया है – तुम सब लोग एक-मन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के बन जाओ, क्योंकि प्राचीन काल में एक-मन होने के कारण ही देवताओं ने बलि पायी थी। देवता मनुष्य द्वारा इसीलिए पूजे गए कि वे एकचित्त थे। एक-मन हो जाना ही समाज-गठन का रहस्य है। यदि तुम 'आर्य' और 'द्रविड़', 'ब्राह्मण' जैसे तुच्छ विषयों को लेकर 'तू-तू' 'मैं-मैं' करोगे, झगड़े और पारस्परिक विरोध का भाव को बढ़ाओगे, तो समझ लो कि तुम उस शक्ति-संग्रह से दूर हटते जाओगे, जिसके द्वारा भारत का भविष्य बनने जा रहा है। इस बात को याद रखो कि भारत का भविष्य पूर्णत: इसी पर निर्भर करता है। बस, इच्छाशक्ति का संचय और उनका समन्वय करके उन्हें एकमुखी करना ही सारा रहस्य है। प्रत्येक चीनी अपनी शक्तियों को भिन्न-भिन्न मार्गों से परिचालित करता है, परन्तु मुट्ठी भर जापानी अपनी इच्छाशक्ति एक ही मार्ग से परिचालित करते हैं, और इसका जो फल हुआ, वह तुम लोगों से छिपा नहीं है। इसी तरह की बात सारे संसार में देखने में आती है। .. ये सब मतभेद और झगड़े एकदम बन्द हो जाने चाहिए।

इस देश में अनेक पन्थ या सम्प्रदाय हुए हैं। आज भी ये काफी संख्या में हैं और भविष्य में भी बड़ी संख्या में होंगे। ... सम्प्रदाय अवश्य रहें, पर साम्प्रदायिकता दूर हो जाए। साम्प्रदायिकता से संसार की कोई उन्नति नहीं होगी, परन्तु सम्प्रदायों के बिना संसार का काम नहीं चल सकता। एक ही साम्प्रदायिक विचार के लोग सारे काम नहीं कर सकते। संसार की यह अनन्त शक्ति कुछ थोड़े-से लोगों के हाथों परिचालित नहीं हो सकती। यह बात समझ लेने पर यह भी हमारी समझ में आ जाएगा कि क्यों यह सम्प्रदाय भेदरूपी श्रमविभाग अनिवार्य रूप से हमारे भीतर आ गया है। भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक शक्ति-समूहों का परिचालन करने के लिए सम्प्रदाय कायम रहें। परन्तु जब हम देखते हैं कि हमारे प्राचीन शास्त्र इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि यह सब भेद-भाव केवल ऊपर का है, सतही मात्र है और इन सारी विभिन्नताओं के बावजूद इनको एक साथ बाँधे रहनेवाला परम मनोहर स्वर्ण सूत्र इनके भीतर पिरोया हुआ है, तब इसके लिए हमें एक-दूसरे के साथ लड़ने-झगड़ने की आवश्यकता दिखाई नहीं देती। ...

यदि कोई तुमसे साम्प्रदायिक झगड़ा करने को तैयार हो, तो उससे पूछो, 'क्या तुमने ईश्वर का दर्शन किया है? क्या तुम्हें कभी आत्म-दर्शन, प्राप्त हुआ है? यदि नहीं, तो तुम्हें ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है? ... सबको अपने-अपने पथ से चलने दो, 'प्रत्यक्ष अनुभूति' की ओर अग्रसर होने दो। सभी अपने-अपने हृदय में उस सत्यस्वरूप आत्मा का दर्शन पाने का प्रयत्न करें। जब वे उस विराट अनावृत सत्य के दर्शन कर लेंगे, तभी उससे प्राप्त होने वाले अपूर्व आनन्द का अनुभव कर सकेंगे। आत्मोपलब्धि से प्रसूत होने वाला यह अपूर्व आनन्द कपोल-कल्पित नहीं है, वरन् भारत के प्रत्येक ऋषि ने, प्रत्येक सत्यद्रष्टा व्यक्ति ने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया है। तब उस आत्मदर्शी हृदय से स्वयं ही प्रेम की वाणी प्रस्फुटित होगी, क्योंकि उसे ऐसे परम पुरुष का स्पर्श प्राप्त हुआ है, जो स्वयं प्रेमस्वरूप है। बस, तभी हमारे सारे साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़े दूर होंगे।

जाति, धर्म, भाषा तथा शासन-प्रणाली – ये सब एक साथ मिलकर एक राष्ट्र का निर्माण करते हैं। यदि एक-एक जाति को लेकर हमारे राष्ट्र से तुलना की जाए, तो हम देखेंगे कि जिन उपादानों से संसार के दूसरे राष्ट्र गठित हुए हैं, वे संख्या में यहाँ के उपादानों से कम हैं। यहाँ आर्य हैं, द्रविड़ हैं, तातार हैं, तुर्क हैं, मुगल हैं, यूरोपीय हैं, मानो संसार की सभी जातियाँ इस भूमि में अपना-अपना खून मिला रही है। भाषा का यहाँ एक विचित्र-सा जमावड़ा है, आचार-व्यवहारों के सम्बन्ध में दो भारतीय जातियों में जितना अन्तर है, उतना प्राच्य और यूरोपीय जातियों में भी नहीं है।

हमारे पास एकमात्र सम्मिलन-भूमि है – हमारी पवित्र परम्परा, हमारा धर्म। एकमात्र सामान्य आधार वही है और उसी पर हमें संगठित होना पड़ेगा। यूरोप में राजनीतिक विचार ही राष्ट्रीय एकता का कारण है, परन्तु एशिया में राष्ट्रीय एकता का आधार धर्म है, अत: भारत के भावी संगठन की पहली शर्त के तौर पर इस धार्मिक एकता की ही आवश्यकता है। ❍❍❍

धर्म-जीवन का रहस्य (८/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

महाराज अब कीजिए सोई ।
सबकर धरम सहित हित होई ।। २९०/८
ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल ।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहिकाल।२/९१

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी, अन्य समुपस्थित सन्तवृन्द जिज्ञासु और भक्त श्रोताओ, भक्तिमती देवियो, मैं आप सबके चरणों में नमन करता हूँ। अभी आपने परम श्रद्धेय स्वामीजी महाराज से कल की कथा के सन्दर्भ में जो सूत्र सुने वे सचमुच ही गागर में सागर भरकर प्रस्तुत करने के समान है। परम श्रद्धेय स्वामीजी ने संक्षेप में कथा का वह रस प्रदान किया है। वे तो हम-सबके वन्दनीय हैं। किन्तु कथा में यदि कुछ विलक्षणता है, तो वह वक्ता की नहीं है। यन्त्र द्वारा प्रभु जो अभिव्यक्त करना चाहते हैं, वह कराते रहे हैं।

'धर्म' के सन्दर्भ में चर्चा चल रही थी। धर्म का एक पक्ष वह है, जो व्यक्ति को अशुभ कर्मों का परित्याग करके शुभ कर्मों की प्रेरणा देता है। यही धर्म की पहली कक्षा है। इसके साथ ही 'धर्म' व्यक्ति को यह आश्वासन तथा प्रलोभन देता है कि यदि शुभ कर्म करेगा, तो उसे सुख की प्राप्ति होगी। परन्तु इस प्रलोभन के साथ ही शास्त्रों ने व्यक्ति को भय भी दिखाने का प्रयास किया है। मनुष्य के जीवन में, बहुधा लोभ और भय की दो प्रवृत्तियाँ ही कर्म की दिशा में प्रेरित करती हैं। व्यक्ति कई कार्य कुछ पाने की इच्छा के कारण, लोभ से प्रेरित होकर करता है और कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिसमें भय की वृत्ति काम करती है। आकर्षण तो नहीं लग रहा है, अच्छा तो नहीं लग रहा है, परन्तु उसके साथ यदि यह भय जुड़ जाय कि ऐसा कार्य करने पर हमें दण्ड मिलेगा, तो व्यक्ति डर के मारे भी कई कर्मों का परित्याग करता है। किसी ने कहा – महाराज शास्त्रों में तो कर्मों के इतने फल लिखे हुए हैं, परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि इस पर व्यक्ति उनमें प्रवृत्त क्यों नहीं होता?

यह एक पुरानी शैली थी और उसको सही-सही समझना चाहिए। शास्त्रों ने जब भी किसी व्रत, किसी दान या किसी क्रिया का वर्णन किया, तो उसकी फलश्रुति बहुत विशाल करके लिख दी – आप इस व्रत को करें, तो आपको अश्वमेध यज्ञ का फल मिल जाएगा, ऐसा किया तो आपको इतने महान पुण्यों का फल मिलेगा। सत्कर्मों के लिये शास्त्रों में इतने प्रलोभन सामने दिये जाते हैं। जैसे आपको यह सूचना दी जाय कि आज इस निमंत्रण में ये-ये वस्तुएँ मिलने वाली हैं, इससे भोजन के लिए जाने का आकर्षण तो हो सकता है, परन्तु स्वाद और तृप्ति का अनुभव तो तभी होगा, जब सचमुच ही व्यक्ति के सामने वे वस्तुएँ परोसी जायँ और वह उसका स्वाद ले। गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में लिखा, यह तो ठीक है कि वेदों ने तो बड़ी उदारता के साथ परोस दिया है, परन्तु जिसे वह वस्तुत: मिलेगा, वही तो दावा कर सकता है कि शास्त्रों में जो कुछ लिखा हुआ है, वह यथार्थ ही है –

सोइ जानिहै पइहै करमफल भरि भरि बेद परोसो ।।

अभी एक दिन कुछ सत्संगी लोग बैठे हुए थे। उनमें से एक माताजी ने अचानक पूछ दिया कि स्वर्ग-नरक हैं, इसका क्या प्रमाण है? मैंने कहा – भई, जहाँ आप स्वयं न गये हों, तो वहाँ का दृश्य जिसने देखा हो, उसे पढ़कर विश्वास कर लीजिए कि लिखने वाले ने वहाँ की यात्रा की और वहाँ का दृश्य देखा, तो ठीक ही देखा होगा। परन्तु यदि विश्वास न होता हो, तो स्वयं ही जाकर देख आइए।

ऋषि-मुनियों ने अपनी योगदृष्टि से स्वर्ग-नरक आदि को देखा है और शास्त्रों ने उनका वर्णन किया है। अब आप या तो उस पर विश्वास कर लें और नहीं, तो फिर स्वयं जाने के लिए प्रस्तुत हो जायँ कि हम तो स्वयं जाकर देखेंगे। परन्तु समस्या तो उसके बाद भी बनी रहेगी। कबीरदासजी तो बड़े अक्खड़ शैली के सन्त थे। किसी ने

उनसे पूछा – महाराज, स्वर्ग में क्या-क्या है। इस पर वे बोले – अरे भाई, लोग यहाँ से तो जाते हुए दिखाई रहे हैं, परन्तु यदि कोई लौटकर आकर वहाँ के बारे में बताये, तब तो हम सुनकर जानें –

इत ते सबहीं जात हैं, भार लदाय लदाय ।
उत ते कोउ आवत नहीं, जासों पूछूँ धाय ।।

इनका यह अभिप्राय नहीं है कि 'स्वर्ग नहीं है', बल्कि यह कि स्वर्ग की बात भले ही कही जाय, लेकिन स्वर्ग का प्रलोभन क्या व्यक्ति को सत्कर्म करने के लिए पूरी तरह से प्रेरित कर पाता है? वस्तुत: स्वर्ग से प्रलोभित होने के स्थान पर व्यक्ति इसी संसार में स्वर्ग के सुखों की अनुभूति पाने की चेष्टा करता है। इसी प्रकार शास्त्रों ने तामिश्र, अन्ध-तामिस्र, रौरव आदि नरकों का वर्णन किया है। उनका वर्णन इतना भयानक है कि पढ़कर व्यक्ति के रोंगटे खड़े हो जायँ। कई स्थानों पर आपको वे चित्र भी देखने को मिलेंगे, जो चित्रकारों ने अपनी कल्पना से बनाए हैं। परन्तु नरक का यह भय भी लोगों को बुराई से रोक नहीं पाता।

इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका कोई उपयोग नहीं है। सम्भव है ही कि यदि कोई व्यक्ति विश्वासी प्रकृति का हो, तो वह सहज भाव से ही विश्वास कर ले। इसलिए एक शब्द है 'धर्मभीरु'। यह 'धर्मभीरु' शब्द बड़े महत्त्व का है। जिस व्यक्ति को धर्म से भय की प्रतीति होती है, वह 'धर्मभीरु' है और ऐसा व्यक्ति स्वभावत: बुरे कर्मों से कुछ-न-कुछ बचने की चेष्टा तो करता ही है।

इस प्रकार लोभ के कारण व्यक्ति के जीवन में सत्कर्म होते हैं और भय के कारण भी वह बुराइयों से थोड़ा-बहुत तो बचता ही है, परन्तु वस्तुत: यह प्रलोभन और भय सच्चे अर्थों में पूरा समाधान नहीं है। तो फिर क्या करें?

शास्त्रों में त्रिवेणी संगम का जो वर्णन है – अन्य तीर्थ तो तीर्थ मात्र हैं, परन्तु प्रयाग तीर्थराज हैं। वहाँ पर तीन नदियों के संगम की कल्पना की गई और 'रामचरित-मानस' में उसे एक आध्यात्मिक रूप देते हुए यह कहा गया कि वस्तुत: यदि हम अपने जीवन में भी तीर्थराज प्रयाग की सृष्टि कर सकें, तो हम धन्य हो सकते हैं। इस तीर्थराज प्रयाग को जो आध्यात्मिक रूप दिया गया, वह यह है कि जहाँ पर गंगा-यमुना और सरस्वती का दर्शन होता है। व्यक्ति के अन्त:करण में इन तीनों नदियों का संगम होने का तात्पर्य यह है कि हमारे अन्तर्मन में, अन्तर्जीवन में ज्ञान की सरस्वती तथा कर्म की यमुना हो और ये ज्ञान और कर्म की धाराएँ भक्तिरूपा गंगा की धारा में मिलें। भक्ति मानो गंगाजी की धारा हैं और यमुना मानो कर्म का प्रतीक है –

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा ।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा ।।
बिधि निषेधमय कलिमल हरनी ।
करम कथा रबिनंदनि बरनी ।। १/१/८-९

कर्म की यमुना व्यक्ति को अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुँचाती। इसके लिये कर्म की यमुना को भक्ति की गंगा में विलीन हो जाना चाहिए। यमुना के जल में श्यामता है और गंगा का जल उज्जवल है। वह श्यामता उस उज्ज्वलता में मिलकर उससे एकाकार हो जाती है। इसका सांकेतिक अर्थ है कि कर्म में कुछ-न-कुछ श्यामता तो रहेगी ही, कुछ-न-कुछ कालिमा का अंश रहेगा ही। उसकी इस कालिमा का समापन तभी होगा, जब वह भक्ति की गंगा में विलीन हो जाएगी।

ज्ञान की सरस्वती गुप्त हैं, वे दिखाई नहीं देतीं। कर्म की यमुना का भक्ति की गंगा में विलीन होने के बाद भी, गंगा-यमुना तथा सरस्वती तीनों का संगम हो जाने के बाद भी, चरम लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। संगम के बाद भी गंगाजी आगे की ओर प्रवाहित होती हैं और गंगासागर तक जाकर वहाँ समुद्र के साथ एकाकार हो जाती हैं। हमारी संस्कृति में, हमारे आध्यात्मिक दर्शन में, एक संकेत प्रस्तुत किया गया है कि हम कर्म तो करें, परन्तु उसे भक्ति में एकाकार करें और अन्त में उसे जाकर स्वरूप-सिन्धु में विलीन हो जाना चाहिये –

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई ।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ।। ४/१४/८

जितनी भी नदियाँ हैं, वे जब समुद्र में जाकर एकाकार हो जाती हैं, तब वह न गंगा रह जाती है, न यमुना और न ही सरस्वती। नदी चाहे कोई भी हो, चाहे नर्मदा हो या कावेरी, एक बार सागर से मिल जाने पर वह कोई नदी नहीं रह जाती, सागर ही हो जाती है।

भगवान राम और भगवान परशुराम के सन्दर्भ में जो बात कही जा रही थी, उसका सांकेतिक तात्पर्य यह है कि वस्तुत: यदि हम केवल भय तथा लोभ के द्वारा ही इस 'धर्म' को जीवन में स्थित करना चाहेंगे, तो उससे एक सीमा तक लाभ अवश्य होगा, परन्तु उसका सही लाभ तो तब तक नहीं होगा, जब तक कि धर्म का मूल आधार 'भय तथा लोभ' के स्थान पर 'विवेक' न हो।

संसार पर जब दृष्टि जाती है, तो सब खण्ड-ही-खण्ड दिखाई देता है, भिन्न-ही-भिन्न दिखाई देता है। रूप भिन्न, रंग भिन्न, बुद्धि और स्वभाव भिन्न, गुण भिन्न और यह कहना चाहिए कि व्यक्ति को जिस रूप में हम सामने देखते हैं, उन सबमें हमें भिन्नता-ही-भिन्नता दिखाई देती है। इस भिन्नता की एक व्याख्या तो कर्म-सिद्धान्त करता है और वह एक सीमा तक उपयोगी भी है।

करम प्रधान विस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।।२/२१८/४

इसका अर्थ यह मान लिया जाय कि जिसने जैसा कर्म किया है, उसे वैसी आकृति मिली है, वैसा रूप मिला है, वैसी बुद्धि मिली है। मान लीजिए जिनके जीवन में सौन्दर्य नहीं है, उतनी शक्ति नहीं है, उतनी सामर्थ्य नहीं है, तो उनके हृदय में यह कर्म-सिद्धान्त प्रेरणा दे कि ये अभाव हमारे अपने कर्मों के परिणाम हैं और हम सत्कर्म के द्वारा इसे परिवर्तित करके अगले जन्म में पा लेंगे, तो एक सीमा तक यह सिद्धान्त उपादेय है कि इससे अभावग्रस्त व्यक्ति को सत्कर्म करने की प्रेरणा मिले और उसके अन्तःकरण में ईर्ष्या आदि की वृत्ति न पनप सके।

कुछ वस्तुओं के सन्दर्भ में तो आप ईर्ष्या कर सकते हैं, जैसे कि इनके पास धन अधिक क्यों है और मेरे पास क्यों नहीं है? आप प्रयत्न कर सकते हैं कि हम अधिक धन कमा लें। लेकिन आपको जो आकृति और जो रंग मिला हुआ है, उसमें आप ईर्ष्या करके क्या करेंगे? जहाँ मनुष्य का हाथ दिखाई देता है, वहाँ तक तो आप ईर्ष्या कर सकते हैं। परन्तु जहाँ पर मनुष्य का हाथ नहीं दिखता, वहाँ आप ईर्ष्या करें भी, तो दुखी होने के सिवाय उससे कोई लाभ नहीं है। इसीलिए गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में एक व्यंग्य-भरा शब्द चुना। उस पद में वे कहते हैं – बस, राम का नाम लेते हुए चलो, नहीं तो संसार के 'बेगार' में पड़ जाओगे –

राम कहत चलु, राम कहत चलु,
राम कहत चलु भाई रे।
नाहिं तौ भव-बेगारि महँ परिहै,
छूटत अति कठिनाई रे।। (१८९)

आप लोग बेगार के अर्थ से परिचित होंगे। प्राचीन काल में जब राजाओं का शासन था, जमींदारी-प्रथा प्रचलित थी, तो जब वे अपनी प्रजा से कोई काम लेते थे, तो मजदूरी नहीं देते थे। कहते – भई, यह तो प्रजा होने के नाते तुम्हारा कर्तव्य है, इसके बदले में तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। इसके लिए यह 'बेगार' शब्द प्रचलित था। गोस्वामीजी बोले – संसार में वह राजा या जमींदार ही बेगार नहीं लेते थे, हम सब लोग किसी-न-किसी सीमा तक बेगार लेने के ही अभ्यस्त हैं। आजकल वह बड़ा प्रसिद्ध शब्द हो जाता है शोषक और शोषित वर्ग। परन्तु आप विचार करके देखें, तो यही दिखाई देता है कि प्रत्येक व्यक्ति शोषक और शोषित दोनों ही है। दोनों की वृत्तियाँ व्यक्ति के जीवन में दिखाई देती हैं। एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का शोषण कर रहा है, तो वह दूसरा भी अपने से किसी न्यून व्यक्ति का शोषण कर रहा है। यह वृत्ति प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है। गोस्वामीजी बोले – भई, संसार में हर व्यक्ति आपसे यही कहेगा कि आप तो हमारे सम्बन्धी हैं, इसलिए यह करना आपका कर्तव्य है। गोस्वामीजी कहते हैं – सभी एक-दूसरे से यह बेगार लेने के लिए व्यग्र हैं। परन्तु यदि इस बेगार से बचना हो, तो श्रीराम और उनके नाम का आश्रय लो। इस पद में उन्होंने जीव का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है – शरीर की कल्पना डोली से की है। जीव मानो यात्री है और इन्द्रियाँ मानो कहार हैं। उन्होंने कहा – यह शरीर-डोली सड़ी हुई है, तिकोनी है और इसका साज सब अटपटा है –

बाँस पुरान साज सब अठकठ
सरल तिकोन खटोला रे।।

किसी ने पूछा – जब इतनी अटपटी डोली है, तो बदल क्यों नहीं देते? गोस्वामीजी बोले – बदल कैसे दें? यह तो हमको दान में मिला है। – दान में किसने दिया? बोले – यह डोली सेठ कर्मचन्दजी ने हमें दान में दिया है और उसके साथ कुटिल शब्द भी जोड़ दिया –

हमहिं दिहल करि कुटिल करमचँद ... ।।

अभिप्राय यह कि यह जो शरीर मिला है, यह सुन्दर हो या असुन्दर, चाहे जैसा भी हो, यह तो कर्मचन्दजी का दिया हुआ है। फिर कुटिल कहने का तात्पर्य यह है कि दान देनेवाला यदि कोई वस्तु आपके सुख के लिए दे, तब तो वह उदार है और यदि वह आपको दुख देने के लिए दान का नाम लेकर आपके ऊपर कोई बोझ ही लाद दे, जिसे आप ढोए जा रहे हैं, तो यह कुटिलता ही तो है।

(क्रमशः)

सारगाछी की स्मृतियाँ (३७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अनुग्रहानन्द ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

५-८-१९६०

महाराज – पाश्चात्य शिक्षित अधिकारियों में मौलिकता बहुत कम है। स्वामी अखण्डानन्द महाराज जी भी कहा करते थे कि इन लोगों में व्यावहारिक बुद्धि का अभाव रहता है। जो इन अधिकारियों को देख रहे हो न, सभी एक ही बात समझते हैं – आहार, निद्रा, भय और मैथुन। तुम ठीक से निरीक्षण करो, प्राय: सभी इसके अधीन हैं। सम्पूर्ण जगत के लोग ऑफिस-घूमना, खाना-पीना, गप-शप करना और सोना, इन सबमें ही सारी शक्ति लगा रहे हैं। अपने बारे में कोई सोचता नहीं है, जिसे हमलोग 'आत्मचिन्तन' कहते हैं। यदि तुम मिशन को चाहते हो, तो पढ़-लिख कर डिग्री बढ़ाओ, मान-सम्मान होगा, पाँच लोगों की शाबाशी मिलेगी। किन्तु यदि तुम श्रीरामकृष्ण को चाहते हो, तो इन सब से दृष्टि हटानी होगी। तुम ठीक सोच-विचार कर निर्णय लेना।

प्रश्न – स्वामीजी ने कहा है – "नाम-यश उत्कृष्ट मन की अन्तिम दुर्बलता है (Fame is the last infirmity of noble mind)" कैसे साधु लोग मान-सम्मान के वशीभूत हो जाते हैं?

महाराज – मान-अपमान एक ही वस्तु है। कोई तुम्हें 'महाराज' कह कर आदर-सत्कार किया, तो तुम्हारा मन बहुत शान्त और आनन्दित रहा। यदि कोई आदर नहीं किया, तो मन दुखित हो जाता है। यदि कोई अपमान करे, तो हम उत्तेजित हो जाते हैं। सब कुछ मन में ही है। हमारी बाह्य प्रवृत्ति अधिक होने के कारण हम दूसरों की बात सहज ही समझ पाते हैं। हम जितना अपने दोष-गुणों को नहीं पकड़ पाते, उतना दूसरों के दोष-गुणों को तुरन्त ही पकड़ लेते हैं। किन्तु मेरे और उसके मन की संरचना तो एक जैसी ही है, हो सकता है थोड़ा-बहुत भिन्न है।

ऋषीकेश में एक साधु ने अद्भुत बात कही थी। उसने कहा था – "आप यहीं पर रह जाइये, जिससे साधु जैसा लगेगा !" यह सब पटवारी-बुद्धि, व्यावसायिक बुद्धि है। इसके साथ संन्यास और आध्यात्मिक जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं है, केवल मान-यश की ओर ही दृष्टि है।

संन्यासी और गृहस्थ, इन दोनों में मेल नहीं हो सकता है। संन्यासी यदि गृहस्थ के साथ सर्म्पक रखे, तो वह संन्यास को पकड़कर नहीं रख सकता है। जगत-उद्धार और परोपकार के कार्य में अधिक संलग्न होने से संन्यास संरक्षित नहीं रह पाता।

६-८-१९६०

प्रश्न – यदि मेरे सर्वप्रमुख प्रभारी किसी गलत चीज पर हस्ताक्षर करने के लिए कहें, तो मुझे क्या करना होगा?

महाराज – तुम कहना, मेरे अधिकार में रहने पर मैं नहीं करता। यह कहकर हस्ताक्षर कर देना और रात-दिन ठाकुरजी से प्रार्थना करना तथा बुद्धिमानी से वहाँ से चले जाने का सुयोग ढूँढ़ते रहना। नहीं तो, क्रोध करने से व्यर्थ शक्ति नष्ट होती है। सहन करने से भी क्षय होती है। किन्तु क्रोध करने से उससे बीस गुना अधिक क्षति होती है।

यदि तुम्हारा लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति है, तो उपेक्षा करके किसी को दो मधुर बातें कहकर किसी प्रकार से चले जाना। एक आदमी का लड़का बीमार हुआ है। प्राण अब जाय कि तब जाय, ऐसी स्थिति थी। वह डॉक्टर को बुलाने जा रहा है। मार्ग में उसे कई लोग विभिन्न प्रकार से कष्ट दे रहे हैं। क्या वह उसका विरोध करेगा, या किसी भी तरह पहले डॉक्टर बुलाने की व्यवस्था करेगा?

ईश्वर में मन नहीं लगने पर ही साधुता दिखाने के अहंकार में संघ छोड़ने का हठ करता है। ठाकुर विद्यमान हैं, उन्हें पुकारने से व्यवस्था होगी-ही-होगी। एक संन्यासी को लड़कियों के बीच कार्य करने के लिए दिया गया था। उस बेचारे का तो प्राण जाने जैसे अवस्था हो गयी। उसने मुझे पत्र लिखा। मैंने कोई झमेला न करके, ठाकुरजी को पुकारने को कहा। देखते-ही-देखते एक या डेढ़ महीना के

भीतर उसकी व्यवस्था हो गयी। उसे राँची ले गया। यदि वह क्रोध करता, तो उसकी क्या दशा होती, कौन जानता ! इसके अतिरिक्त हो सकता है कि तुम किसी खराब स्थान पर हो, यह भी हो सकता है, कुछ दिनों में वहाँ से हटाकर किसी अच्छे जगह में रख देंगे। अत: हठ करना या विवाद करना अच्छा नहीं है। किन्तु ये सब बातें संन्यासी के लिये हैं, जो ईश्वर के लिए ही है।

प्रश्न – क्या आनन्दमय कोष में प्रतिष्ठित रहते समय चित्त-वृत्ति की क्रिया नहीं रहती है?

महाराज – नहीं, वह अवस्था तो मन-बुद्धि के अतीत की अवस्था है।

प्रश्न – किन्तु, वहाँ की लीला – जैसे राधाकृष्ण का मिलन-विरह, ठाकुर-स्वामीजी की लीला, क्या इन सबमें शुद्ध मन की क्रिया नहीं है?

महाराज – ठाकुर-स्वामीजी के शरीर में रहते समय जैसी लीला होती है, वह दूसरे प्रकार की है। इसके अतिरिक्त आनन्दमय कोष में अवस्थान काल में जो लीला होती है, वह मानो छोटे बच्चे, बड़े बच्चों का अनुकरण करते हैं, वैसी गुड़िया के खेल जैसा है।

किसी आश्रम में बहुत कार्य चल रहा था। एक साधु ने आकर खिन्नतापूर्वक महाराज से कहा – "एक छोटा आश्रम होगा, ठाकुर-सेवा आदि रहेगी, पाठ, ध्यान, जप और पूजा होगी, तो अच्छा होगा।"

महाराज – कुछ कर्म की आवश्यकता है। जैसे छोटा स्कूल या सात-आठ कॉलेज के छात्र रहेगें। कार्य तो परीक्षा है, तुम कहाँ तक ईश्वर की ओर आगे बढ़े हो, उसकी परीक्षा तो कार्य में ही होगी।

पहले-पहले किसी-किसी को बहुत कर्म की आवश्यकता होती है, किन्तु हमेशा मार्ग-दर्शन चाहिए। एक दूसरा दल है, उसे जो कहोगे, उसे स्वीकार कर लेगा, कोई तर्क और विचार नहीं करता है, कहता है कि अमुक ने कहा है, बस। कुछ सोचना नहीं चाहता है।

कर्म छोड़कर रहना बहुत कठिन है। ऋषिकेश में एक पंजाबी साधु ने एक पौधा लगाया था। प्रतिदिन शाम को पहाड़ और रेत की चढ़ाई पार करके कन्धे पर पानी ढोकर पौधों में डालना ही उसका काम था।

प्रश्न – महाराज, जो लोग संघ में आए हैं, क्या उन सबकी मुक्ति होगी?

महाराज – मुक्ति चार प्रकार की है। जैसे जीवन्मुक्त – जैसे ठाकुरजी के शिष्य वृन्द थे। अनागामी – उन लोगों की मृत्यु के समय ईश्वर में गति होती है, गीता में है। सकृदागामी – सकृत् का अर्थ है एकबार, अर्थात् एक बार पुन: आना होगा। थोड़ी-सी भोग की इच्छा रहने के कारण पुन: जन्म लिया है अथवा होगा। चतुर्थ है – स्त्रोतापन्न। अर्थात् जलस्त्रोत में एक लकड़ी के टुकड़े के जैसे तैरते-तैरते कभी इधर, कभी उधर करते-करते आगे बढ़ता है। सामान्यत: उनलोगों को पाँच-छ: जन्म लग जाता है, किन्तु वे लोग स्त्रोत के मुँह में पड़ गये हैं।

प्रश्न – क्या जगत का उपकार करने से ज्ञान, भक्ति और मुक्ति नहीं होगी?

महाराज – क्यों नहीं होगी? विष्ठा के कीड़े की भी मुक्ति होगी। किन्तु अनन्त-जन्मों तक उसे प्रतीक्षा करनी होगी। यदि तुम्हें संसार में आनन्द मिलता है, तो रहो न, कौन तुम्हें बाधा दे रहा है ! किन्तु जगत का कल्याण करके इस संसार को अपने मन के अनुकूल नहीं कर पाओगे। तुम्हारे श्रीराम और श्रीकृष्ण को ही कितने लोग पहचानते हैं? अत: 'कीतिर्यस्य स जीविति' का क्या परिणाम है, समझ ही रहे हो ! कीर्ति तो कार्य-कारण में होती है, आवश्यकता पूर्ण हो जाने पर कीर्ति चले जाने को बाध्य है।

प्रश्न – क्यों, कोई व्यक्ति प्रिय और कोई अप्रिय लगता है?

महाराज – स्टेथोस्कोप देखा है? कभी कान में लगाकर सुना है? स्टेथोस्कोप जहाँ पर लगाओगे, वहाँ का धुक-धुक शब्द सुन पाओगे। मन भी वैसा ही है, जहाँ पर लगाओगे, वहाँ पर रहेगा। तुम एक वस्तु को बहुत दिनों से देखते आए हो, उसके बारे में अच्छी धारणा है, इसलिए वह प्रिय लगती है। हम लोग जन्म-जन्मान्तरों से रूप-रस और काम की ओर भागते चले आ रहे हैं। जिससे मन में एक आवेग हुआ है। उस आवेग की दिशा को घुमाना होगा। क्या यह ऐसे-वैसे लोगों का कार्य है ! अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य (poverty and celibacy) नहीं होने से विपरीत दिशा की ओर चलना कठिन है। भोजन और निवास से सन्तुष्ट रहना होगा। इनमें व्यर्थ शक्ति-नष्ट करने से आगे नहीं बढ़ पाओगे। देखा है न, मैं संसार के बारे में विभिन्न बातें करता हूँ, ये सभी वस्तु-विचार हैं। जगत का मिथ्या-बोध नहीं होने से छोड़ने की इच्छा नहीं होगी। **(क्रमश:)**

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (११)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

एक व्यक्ति ने किसी सन्त के पास जाकर पूछा, अच्छा ! कहते हैं कि आत्मतत्त्व न आँखों से देखा जाता है, न कानों से सुना जाता है, इत्यादि। तो क्या ऐसा भी कोई तत्त्व हो सकता है? संसार की सारी वस्तुएँ तो पाँचों इन्द्रियों के सहारे ग्राह्य होती हैं। क्या आप ऐसा कोई तत्त्व बता सकते हैं कि जो पाँचों इन्द्रियों के सहारे ग्राह्य न हो। गुरुजी ने कुछ नहीं कहा, एक जोर से घूँसा लगाया। शिष्य ने कहा कि आप क्या कर रहे हैं? गुरुजी ने कहा कि तुम्हें क्या हुआ है? शिष्य ने कहा, आपने मुझे घूँसा मार दिया, कितनी वेदना हो रही है ! गुरुजी ने कहा कि इस वेदना का वर्णन तो करो। किस ज्ञानेन्द्रियों के सहारे तुमने इस वेदना का अनुभव किया? क्या आँखों ने वेदना को देखा? कहा कि नहीं। स्पर्श से मालूम करते हो कि वेदना नरम है या कठोर है, वह गरम है या शीतल है। कहा – नहीं ! क्या स्वाद से चखकर बता सकते हो कि वेदना कैसी है? नहीं। क्या सूँघकर बता सकते हो? शिष्य ने कहा, नहीं ! गुरुजी ने कहा कि एक सामान्य-सी वेदना पंचेन्द्रिय ग्राह्य नहीं होती है। तुम कहते हो कि ब्रह्म पंचेन्द्रिय ग्राह्य नहीं है, इसलिये वह नहीं है। अब हम तुम्हारा ही तर्क लेकर तुमसे कहेंगे कि तुम्हारी वेदना भी नहीं है, क्योंकि वह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का विषय नहीं है, तो क्या वह वेदना नहीं है? शिष्य ने कहा, है। गुरुजी ने कहा, ठीक वैसे ही यह चैतन्य भी है। यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की पकड़ में नहीं आता है, फिर भी इसका अस्तित्व है।

यहाँ पर गुरु जी ने यह कहा – यदि तुम समझते हो कि तुम सचमुच में ब्रह्म को जानते हो, तो तुम थोड़ा सा ही जानते हो। तू अपने भीतर में जिस ब्रह्म का अनुभव करते हुए कह रहा है कि मैंने उस ब्रह्म को या आत्मा को या चैतन्य को जान लिया, जो देवों को ज्ञात है। मैंने पहले बताया था कि देव के दो अर्थ हैं। एक जिनकी हम शक्तियों के रूप में, इन्द्र, वरुण इत्यादि के रूप में बाहर कल्पना करते हैं और दूसरा अर्थ है, वे हमारी इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता हैं। जैसे नेत्र के अधिष्ठाता देवता सूर्य को कहा जाता है। हाथ के अधिष्ठाता देवता इन्द्र हैं। तो ऐसे हमारी कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता कहे जाते हैं। गुरुजी शिष्य को कहते हैं कि तू यदि ऐसा मानता है कि देवताओं में चैतन्य का रूप है, मानों ये इन्द्रियाँ चैतन्यमय दिखाई देती हैं, तो मैं कहूँगा कि तुम फिर मीमांसा करो, विचार करो कि क्या तुमने सचमुच उसे जाना है? गुरुजी के कहने पर फिर से शिष्य वापस जाकर साधना करता है और उसके बाद आकर गुरुजी को प्रणाम करता है। गुरुजी ने पूछा – क्यों? ठीक है, तुम्हारी साधना ठीक चली? क्या तुम्हें कुछ कहना है? शिष्य ने कहा – हाँ ! गुरुजी ! आपकी कृपा से साधना ठीक चली। आपने जिस तत्त्व पर चिन्तन करने के लिए कहा था, मैंने वैसा ही किया। तो क्या फल मिला? शिष्य कहता है मन्ये विदितम्, मुझे ऐसा लगता है कि मैं शायद जान पा रहा हूँ । पहले तो वह कहता था कि सुवेद – मैंने अच्छी तरह से जान लिया है। गुरुजी के बताने के बाद कहता है – हाँ ! मुझे ऐसा लगता है कि मैंने शायद कुछ जाना है?

एंडिंक्टन एक बड़े वैज्ञानिक हैं। आप उन्हें पढ़ते होंगे। वे बड़ी सुन्दर बात कहते हैं –जब हमलोगों ने विज्ञान पढ़ना प्रारम्भ किया और विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश किया, तो हमको ऐसा लगने लगा कि बस हमने सब कुछ जान लिया। अब दुनिया हमारे लिए अंजान नहीं रही। संसार को चलाने वाले जितने नियम हैं, उन नियमों को हम हस्तगत कर लेगें, ऐसा लगा। न्यूटन ने जब Laws of motion (गति के नियम) निकाला। उसके बाद गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त आया, तो विज्ञान के क्षेत्र में हमलोग जो वैज्ञानिक थे, ऐसा मानते थे कि बस अब सब कुछ जानना हो गया। आज हम देखते हैं, हम इस संसार की गहराई में, प्रकृति की गहराई में, प्रकृति के नियमों की गहराई में, हम जितना प्रवेश करते जा रहे हैं, उतना ही हमें लगता है कि हमने कुछ नहीं जाना। यह विज्ञान का क्षेत्र विस्तृत है, अनन्त है, हमने तो कुछ नहीं जाना। यह अनुभूति आज हो रही है। कैसा अद्भुत है ! आप विज्ञान की दृष्टि से देखें या अध्यात्म की

दृष्टि से देखें, जो कम जानता है उसको ऐसा लगता है कि मैंने सब कुछ जान लिया, पर जो बहुत अधिक जानता है उसको लगता है कि मैंने तो कुछ भी नहीं जाना। मैंने तो अभी तक कहीं किसी किनारे को भी नहीं पकड़ा है, ऐसा उसको बोध होता है।

यहाँ भी शिष्य ने विनम्रता से कहा कि गुरुजी ! आपकी कृपा से मुझे दृष्टि मिली, नहीं तो मैं तो ऐसा ही मानता था कि मैंने अच्छी तरह से जान लिया है। लेकिन अब मेरी स्थिति कुछ भिन्न है। गुरुजी ने पूछा। अच्छा बताओ, किस प्रकार से जाना? –

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।। २.२ ।।

– मैं ऐसा नहीं कहता कि मैंने ब्रह्म अच्छी तरह से जान लिया। पर यह भी नहीं कहता कि मैंने नहीं जाना है। हममें से जो लोग ऐसा जानते हैं कि 'उस आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में न तो मैं उसे जानता हूँ और न तो मैं उसे नहीं जानता हूँ, वही ठीक-ठीक जानता है।

बताने का जो क्रम है, उसे देखा आपने ! यह क्रम कैसा विचित्र विरोधाभास दिखाई देता है ! एक बार फिर उसे देखने की चेष्टा करें। सुवेद का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है अच्छी तरह से जानना, जो इन्द्रियों की पकड़ में आये, जिसे हम प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण का तात्पर्य है, आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, इन इन्द्रियों के माध्यम से जो ज्ञान आता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

प्रमाण का क्या तात्पर्य है? प्रमा माने ज्ञान। प्रमाण का तात्पर्य है, जिस तरीके से ज्ञान आये। ज्ञान आने की पद्धति, ज्ञान की प्रक्रिया को प्रमाण कहते हैं। अब प्रत्यक्ष प्रमाण माने जो बिल्कुल आँखों से देखा जाय, कानों से सुना जाय। क्या आत्मा के सम्बन्ध में ऐसा कहा जा सकता है? नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आत्मा तो इन्द्रियों की पकड़ का विषय है ही नहीं। जब आत्मा पकड़ में ही नहीं आ सकती, तो फिर उसका ज्ञान कैसे? नहीं, नहीं, यह अनुभूति की एक पद्धति है। अनुभूति में वह आत्मतत्त्व आता है। जैसे वेदना किसी ज्ञानेन्द्रिय की पकड़ में नहीं आती, पर अनुभूति की पकड़ में आती है। अनुभूति के द्वारा संवेदना का बोध होता है। ठीक इसी प्रकार आत्मतत्त्व का, चैतन्य तत्त्व का अनुभूति के माध्यम से बोध होता है।

हम श्वेताश्वतर उपनिषद में पढ़ते हैं, जिस ब्रह्मगोष्ठी में ऋषि ने प्रश्न उपस्थित किया था –

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता,
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्।।१.१।।

उसके बाद पुनः एक ब्रह्मज्ञानी खड़ा होता है और कहता है कि मेरे मतानुसार इस विश्व का कारण काल है। किसी ने कहा स्वभाव है, जिसे दूसरे मन्त्र में कहा गया है –

कालः स्वभावो नियतिर्यदिच्छा
भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वात्मभावा-
दात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ।

एक-एक व्यक्ति ने एक-एक कारण बताया। हमारा व्यक्तिगत मत है कि आदिशंकराचार्य ने इस पर भाष्य नहीं लिखा। अन्य किसी शंकराचार्य ने जो उस गद्दी पर आसीन हुए थे श्वेताश्वतर पर भाष्य लिखा, किन्तु बड़ा सुन्दर लिखा है। वे कहते हैं, एक श्वेताश्वतर ऋषि सबकी बात सुनने के बाद स्वयं खड़े होकर कहते हैं – देखिए ! आपने कहा कि संसार का कारण, विश्व का कारण, जगत का कारण काल है। आप में से किसी एक ने कहा कि स्वभाव है, किसी ने कहा कि नियति, किसी ने कहा कि आकस्मिकता है। आपमें से पाँचवे ने कहा कि संयोग है – ये सब मिल-जुलकर संसार को उत्पन्न करते हैं। किन्तु मेरा एक अपना विनीत मत है। क्या मत है? मैं ऐसा कहूँगा कि इनमें से कोई भी इस विश्व का कारण नहीं है। तब कारण क्या है? वह ब्रह्म ही कारण है, वह चैतन्य ही कारण है।

एवं पक्षान्तराणि निराकृतं प्रमाणान्तर अगोचरे वस्तुनि प्रकारान्तरम् अपश्यन्तः ध्यानयोगानुगमेन परम मूल कारणं प्रतिपेदिरे एवं पक्षान्तराणि निराकृतम्। श्वेताश्वतर ऋषि ने जो पक्ष रखे थे, अन्य ब्रह्मविदों ने उन पक्षों का निराकरण किया। कहा, कि आप कहते हैं कि यह ठीक नहीं है, काल ठीक नहीं है, स्वभाव ठीक नहीं है, सबका सम्मिलित योग, यह भी ठीक नहीं है। तो बाकी ब्रह्मविद लोगों ने कहा कि आप प्रमाण बताइये कि आप जो कहते हैं कि वह ब्रह्म वह आत्मचैतन्य इस संसार का कारण है। **(क्रमशः)**

शिवज्ञान से जीव की सेवा

स्वामी शशांकानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, देहरादून

दक्षिणेश्वर के मन्दिर में श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में छोटी खटिया पर बैठे थे। सामने कुछ वैष्णव भक्त बैठे थे। श्रीरामकृष्ण कह रहे थे, "वैष्णव धर्म में तीन बातें मुख्य हैं, "जीव पर दया, भगवन्नाम में रूचि और साधु संग" 'जीव पर दया' कहते ही वे समाधिस्थ हो गए फिर बाह्यचेतना आने पर कहने लगे, 'छिः छिः, यह कैसी भावना? जीव पर दया? जीव पर दया करने वाला तू कौन? कहो, शिवज्ञान से जीव की सेवा।" नरेन्द्रनाथ (जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्व विख्यात हुए थे) बाहर आकर अपने मित्रों से कह रहे थे, "आज जो कुछ मैंने सुना, अद्भुत बात है। यदि सुअवसर मिला तो सारे विश्व में इसका प्रचार करूँगा।"

बात बड़ी सरल-सी लगती है। परन्तु है तो आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुभूति का निचोड़, सब ग्रन्थों का सार और आध्यात्मिक अनुभूति का व्यावहारिक स्वरूप। 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का अर्थ लोग यही कहते हैं कि केवल ब्रह्म ही सत्य है और यह दीखने वाला जगत तीन काल में नहीं है। ब्रह्म निर्गुण निराकार, एकमेवाद्बितीयम् है, इन्द्रिय, मन, वाणी और बुद्धि से परे है, अगम्य है। वेद भी उसका वर्णन करते-करते थक गए, पर बता नहीं पाए कि वह अनुभूति क्या है। 'वेदोऽवेदो भवति' किन्तु हम तो संसार में हैं, सृष्टि का एक अंग हैं, इन्द्रिय, मन, वाणी और बुद्धि से ही सब व्यवहार करते हैं। जब तक देह, मन और बुद्धि का ज्ञान है, संसार सत्य है, उसका ज्ञान सत्य है। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या ब्रह्म अलग है और संसार अलग है? लोग कहते हैं, ब्रह्म ही ब्रह्मा बनकर सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिवजी संहार करते हैं? तब तो प्रश्न जटिल होता जाता है। तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर को ब्रह्म ने बनाया या ब्रह्म ही बना? फिर सृष्टि को बनाने में जिन भौतिक पदार्थों का प्रयोग हुआ वह क्या है? कहाँ से आए इत्यादि।

इस सम्बन्ध में तीन वाद दार्शनिकों के हैं। द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद एवं अद्वैतवाद। किन्तु भगवान श्रीरामकृष्ण इन तीनों वादों को पृथक् नहीं मानते। ये तो साधक की तीन अवस्थायें हैं। जब साधना शुरू करता है तो ईश्वर सम्बन्धी धारणा कुछ और होती है। वह क्रमशः इन तीन अवस्थाओं से गुजरता हुआ इन तीनों का अतिक्रम कर परमानुभूति की प्राप्ति करता है। जहाँ उसे सृष्टि भी ईश्वर स्वरूप दिखायी देती है। तब 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के साथ 'जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः' यह स्पष्ट होता है। इसीलिए भगवान श्रीरामकृष्ण ने कहा था, 'शिवज्ञान से जीव सेवा'। आइए, श्रीरामकृष्ण देव की दृष्टि से इन तीनों भावों को समझकर वास्तविक सत्य का विश्लेषण करें।

साधक-जीवन के तीन सोपान :
द्वैत-अद्वैत-विशिष्टाद्वैत

प्रथम सोपान : द्वैतभाव : साधक जब प्रथम धर्मजीवन में प्रवेश करता है, तो कोई देव या देवी उसके इष्ट-देवता या इष्ट-देवी के रूप में होती हैं, यह उसके आध्यात्मिक जीवन का प्रथम सोपान होता है। वह जानता है कि उसके इष्टदेव या देवी अति मानवीय गुण सम्पन्न हैं। मानव उन गुणों का अधिकारी नहीं है। इष्ट देवता का अपना एक लोक है। जैसे भगवान विष्णु बैकुण्ठ में रहते हैं, श्रीकृष्ण गोलोकधाम, श्रीराम साकेत में, भगवान शिव कैलाश पर, श्रीनारायण क्षीरसागर में इत्यादि। उन्हीं की सृष्टि यह जगत है, जो अनादि अनन्त है। यह जगत सदा अलग ही रहेगा। साधक अपने को जीव मानता है। यह बन्धन में है। जीव कभी परमेश्वर नहीं हो सकता, वह सर्वदा परमेश्वर से अलग ही रहेगा। मुक्ति का अर्थ है इष्ट देवता के लोक या धाम में सामीप्य मुक्ति प्राप्त करना। वह इष्ट देवता की सेवा में अनन्तकाल तक रहेगा।

साधक यह तो जानता है कि उसके भगवान १. किसी लोक या धाम में रहते हैं। २. फिर भी वे सर्वव्यापक हैं, सर्वान्तर्यामी हैं अर्थात् प्रत्येक प्राणी के हृदय में अपने उसी स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। अर्थात् यदि विष्णु हैं, तो चतुर्भुजी शंख, चक्र, पद्म और गदाधारी रूप में, श्री राम हैं तो धनुर्धारी रूप में और श्रीकृष्ण सुदर्शनधारी के रूप में। ३. वह यह जानता है कि पुकारने से, प्रेम से, प्रार्थना से वे

प्रकट होकर दर्शन देते हैं। ४. वह यह विश्वास करता है कि वे दर्शन देकर वर देते हैं। मृत्यु होने पर मुक्ति प्राप्त होने पर उन्हीं के पार्षद प्रभु के पास ले जायेंगे। ५. वह सोचता है कि प्रभु के गुण अलौकिक हैं, उनका अनुसरण नहीं हो सकता, उनके गुणों को जीव अर्जन नहीं कर सकता। वे लीलाधारी हैं, मनुष्य लीला का दर्शन कर आनन्द ले सकता है या लीला का ध्यान करने से धन्य हो जाएगा। प्रभु के प्रति अत्यन्त प्रेम और भक्ति का आस्वादन करता है। पर वह यह जानता है कि प्रभु प्रभु ही हैं और मैं दीन-हीन जीव उनका सेवक या दास मात्र हूँ। उनके द्वारा दिए गए उपदेश मानना ही धर्म है। ६. वह प्रार्थना करता है, कृपा माँगता है, दया का पात्र बनना चाहता है, प्रभु के कृपा-कटाक्ष पाकर धन्य हो जाता है। ७. प्रभु परमेश्वर जो करते हैं, वही होता है। वह केवल यन्त्र मात्र है। प्रभु कहीं भी प्रगट हो सकते हैं – हिरण्यकशिपु के राजभवन के खम्भे में, वन में ध्रुव के सामने इत्यादि। ८. वे मनुष्य शरीर धारण कर आते हैं। वे जन्म नहीं लेते, प्रगट होते हैं, लीलाएँ करते हैं। उनके अन्तर्ध्यान होने पर नाम, रूप, गुण, लीला और धाम छोड़ जाते हैं, जिनका आश्रय ले नाम जप कर, रूप का चिन्तन कर, गुणों का वर्णन कर, लीला का रसास्वादन कर तथा धाम का भ्रमण कर जीव प्रभु के धाम को प्राप्त करेगा। अपने इष्ट का सामीप्य पाकर जन्म-मरण से मुक्त हो जाएगा। ९. गुरु कृपा होने पर उसे मन्त्र मिलेगा। वह उनकी कृपा से ईश्वर-प्राप्त करेगा। यह द्वैतभाव है। श्रीरामकृष्ण देव के शब्दों में पत्थर की गुड़िया समुद्र जल में डूबने पर अलग ही रहती है, पानी उसमें नहीं भरता, यह द्वैतभाव का उदाहरण है।

द्वितीय सोपान : विशिष्टाद्वैतभाव

साधक के जीवन में जब इष्ट-चिन्तन करते-करते मन इष्ट-चिन्तन में तन्मय हो जाता है, तो देहबोध नहीं रहता। मन इष्ट-स्वरूप के ध्यान में डूब जाता है। मन इष्टमय हो जाता है। परन्तु फिर भी ध्याता और ध्येय अलग ही रहते हैं। वह इष्टमय होते हुए भी एक नहीं हुआ। उसका जीव-भाव नष्ट होकर इष्ट में तन्मयता का स्वरूप तो ले लेता है, किन्तु अपने को इष्ट-स्थान से अलग ही जानता है। ईश्वर निर्गुण, निराकार, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं। वही उनके गुण मुझमें भी हैं, मैं भी निर्गुण, निराकार हूँ, मैं भी अनन्त हूँ, ज्ञान स्वरूप, आनन्द स्वरूप हूँ। प्रभु भी अजन्मा हैं, मैं भी अजन्मा हूँ, फिर भी मैं तो अंश मात्र हूँ, वे अंशी हैं, पूर्ण हैं। वे सर्वव्यापक हैं, मुझमें भी व्याप्त हैं। यह अंश-अंशी का भाव प्राप्त होने पर सारूप्य मुक्ति प्राप्त होती है। विष्णुभक्त बैकुण्ठ में चतुर्भुजी शरीर धारण कर प्रभु के साथ रहता है इत्यादि। यह विशिष्टाद्वैत भाव है। श्रीरामकृष्ण के अनुसार कपड़े की गुड़िया जब जल में डूबती है, तो जलमय हो जाती है। निचोड़ने पर गुड़िया और पानी अलग ही रहते हैं। गुड़िया घुल भी नहीं जाती, अलग भी नहीं रह पाती। यह विशिष्टाद्वैत का उदाहरण है।

इस भाव में शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि रहती है। शरीर का ज्ञान नहीं रहता। पर मन और बुद्धि अपना अस्तित्व भी बनाए रखते हैं। ईश्वर उसके मन और बुद्धि में प्रतिबिम्बित होते हैं। जैसे दर्पण रहने तक प्रतिबिम्ब और व्यक्ति अलग दिखाई देते हैं।

तृतीय सोपान : अद्वैत भाव

जब साधक का मन, बुद्धि भी आत्मभाव में विलीन हो जाते हैं, साधक और साध्य एक हो जाते हैं, तब आत्मा और परमात्मा में भेद नहीं रहता। आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। आत्मा का चिह्न भी नहीं रहता। जैसे श्रीरामकृष्ण देव की भाषा में समुद्र मापने चली नमक की गुड़िया, तो उसमें इतनी घुल गयी कि उसका अस्तित्व ही नहीं रहा। केवल समुद्र ही रहा और नमक की गुड़िया उसमें एक हो गयी। तब साधक परमात्मा के शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव का ही बन जाता है। इस एकत्व के बाद शरीर रहने पर उसे जीवनमुक्त, ब्रह्मवादी या ईश्वरावतार की संज्ञा दे दी जाती है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं कि साधारण जीव २१ दिन तक ही जीवित रह पाता है। परन्तु ईश्वरावतार प्रयोजन अनुसार शरीर रख सकते हैं।

तीनों सोपानों का समन्वय स्वरूप

ऐसा नहीं है कि एक सोपान दूसरे और तीसरे तक जाता है। साधक भिन्न-भिन्न समय और भाव में आना-जाना करता है। जैसे भगवान श्रीराम के यह पूछने पर कि 'तुम मुझे क्या मानते हो? हनुमानजी ने उत्तर दिया था प्रभो ! जब मुझमें देह बुद्धि होती है, तो आप स्वामी मैं

सेवक हूँ। जब मैं मन और बुद्धि के स्तर पर होता हूँ, तो आप अंशी मैं अंश हूँ। जब मेरी आत्मबुद्धि होती है, तो जो आप हैं, वही मैं हूँ।

साधक जब अन्तिम स्तर में पहुँच जाता है, तब वह तीनों भावों में आवागमन कर सकता है। श्रीरामकृष्ण के जीवन में बहुत घटनाएँ मिलेंगी कि वे कैसे अद्वैत भाव से नीचे उतरने के लिए इच्छाओं का आश्रय लेते थे, जैसे 'पानी पीऊँगा' भक्तों के बिना क्या लेकर रहूँगा? इत्यादि।

वे कहते थे सब समय 'नि' के ऊपर नहीं रहा जाता, नीचे उतरना पड़ता है (सा रे ग म प ध नि) में कोई भी भाव मिथ्या नहीं है, सभी भाव सत्य हैं। ईश्वर भी भावानुसार रूप धारण करते हैं या अरूप भी होते हैं।

आज का भौतिकवादी वैज्ञानिक कभी-कभी अज्ञानी जैसे अनुभव कर बैठता है। उसने रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, इत्यादि में वह कार्य कर दिखाया है, जो आर्श्चचकित कर देता है, किन्तु अध्यात्म-विज्ञान में वह बौना ही रह गया है और अवैज्ञानिक बातें करता है। वह कहता है कि सृष्टि के लिए किसी सृष्टिकर्ता की आवश्यकता नहीं है। वैज्ञानिक ने यद्यपि ईश्वर के मस्तिष्क को समझने की कोशिश की थी और उसका यह मानना था कि दुनिया बनाने की प्रक्रिया पर उसका कोई नियन्त्रण नहीं है। पर अब तो वह कहता है कि ईश्वर सृष्टिकर्ता ही नहीं है। लोग भले ही वैज्ञानिकों की खोज को धर्म-विरोधी या शास्त्र-विरोधी कहकर लड़ते रहें, पर विज्ञान तो विज्ञान ही है। यह भी सत्य तक पहुँचने का मार्ग है। भौतिक विज्ञान की खोज बाह्य जगत तक, दृश्य तक ही सीमित है और आध्यात्मिक विज्ञान अर्न्तजगत के असीम आकाश में अनन्त की खोज करते हुए ऊँची उड़ाने भरता रहता है।

भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं, 'जितने मत उतने पथ'। उनकी दृष्टि में जैसे पिपासा मिटाने के लिए हिन्दू जल, मुसलमान पानी, ईसाई वॉटर और वैज्ञानिक एकुआ चाहता है, उसी प्रकार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, उसे ही हिन्दू ईश्वर, मुसलमान अल्ला, ईसाई गॉड और वैज्ञानिक विज्ञान के नियम या प्रकृति के नियम कहते हैं।

वैज्ञानिक नियम ब्रह्म को नकार तो नहीं सकते, भले ही नाम अलग दे दें। आइन्स्टाइन के सापेक्षता सिद्धान्त और क्वांटम सिद्धान्त में क्वांटम की जो परिभाषा है, वह वेदान्त के ब्रह्म की परिभाषा के अति निकटतम पहुँच चुकी है। वेदान्त कहता है '**अणोरणीयान्**'। अखण्ड सच्चिदाननद ब्रह्म। वह अव्यक्त भी है, व्यक्त भी। क्वांटम सिद्धान्त कहता है, क्वांटम अखण्ड शक्ति है, जो कभी व्यक्त होती है और कभी अव्यक्त। अत: विज्ञान के नियम को वेदान्त धर्म स्वीकार करते हुए उसे 'सच्चिदानन्द' कहता है, जहाँ अभी विज्ञान नहीं पहुँच पाया है। क्योंकि यह भौतिक विज्ञान की सीमा के बाहर असीम राज्य की खोज में ही सम्भव है। वही आध्यात्मिक ज्ञान है। इस ब्रह्मानुभूति को आध्यात्मिक वैज्ञानिक मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने खोज निकाला था और कहा था, ''**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**'' – 'मैंने उस ज्योतिर्मय परम पुरुष (परम सत्य) को जान लिया है, जो समस्त अन्धकार (अज्ञान) से परे है, जिसे जानकर मनुष्य जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाता है।' यह परम सत्य प्रकृति के नियमों या विज्ञान के नियमों का नियन्त्रक है इसीलिए उससे परे है।

वह परम सत्ता सृष्टि में है, सृष्टि उसमें नहीं। वह सृष्टि के नियमों का स्रोत है, सृष्टि के नियमों में नहीं। प्रकृति सृष्टि का कारण है, पर वह प्रकृति का प्राण है। उसकी उपस्थिति से प्रकृति सृष्टि करती है, वह तो जादूगर है प्रकृति उसकी जादू-शक्ति है। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, यह जीव, जगत, चौबीस तत्त्व वही हुए हैं। ब्रह्म ही जीव-जगत बना है और सभी में समाया हुआ है।

ईशोपनिषद में कहते हैं, **ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्** – ईश्वर ही समस्त दृश्य-अदृश्य जगत में व्याप्त है। संसार जैसा दिखता है, उस दृष्टि को हटाकर जैसा है वैसा देखो। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते है, **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**' – ईश्वर सभी जीवों के हृदय में विराजमान हैं। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं – '**जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।' 'सियराम मय सब जग जानि। करहूँ प्रणाम जोरि जुग पानि।**'

ब्रह्म और प्रकृति : चैतन्य का संघर्ष

सड़क के किनारे बैठे कुछ व्यक्ति पत्थर तोड़ रहे थे। जैसे ही हथौड़ी पड़ती, बिचारा पत्थर टुकड़े हो जाता, पर

न कुछ कह सकता था और न ही कुछ कर सकता था। रेल की पटरी पर एक बड़ा मिट्टी का ढेला रखा था। एक भारी इन्जन आकर उसे कुचल गया। ढेले का नामोनिशां भी न रहा। जड़ तो जड़ ही है न। पर शास्त्र कहते हैं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह सब कुछ ही ब्रह्म है अर्थात् चैतन्य स्वरूप है। तो क्या पत्थर और मिट्टी के ढेले में कोई शक्ति ही नहीं है, तो ब्रह्म कैसे है? थोड़ा विचार करें।

जड़ पदार्थ उसको कहते हैं, जो ब्रह्म की स्थूलतम अभिव्यक्ति है। जहाँ चेतना शून्य के स्तर पर है। इसीलिए उसमें प्राण भी अति क्षीण स्वरूप में होते हैं। उसमें ब्रह्म की अभिव्यक्ति शून्य है। जैसे एक बीज अपनी निष्क्रिय अवस्था में जब होता है, तो उसमें तो जीवन के कोई लक्षण नहीं दीखते। पर जब खेत में बोया जाता है, तो वह फूलने लगता है, पानी हवा और खाद पाकर उस बीज में से अंकुर निकलता है, जड़ निकलती है, जैविक परिवर्तन होता है, फिर धीरे-धीरे पौधा और फिर वृक्ष होता है। उस प्रकार जीव की बीजवत अवस्था पत्थर या मिट्टी है, परन्तु यह भी एक योनि है। इसमें भी प्राण होते हैं पर नहीं के समान।

एक पौधे का अंकुर बीज से निकल कर मिट्टी की परतों को हटाकर जमीन के ऊपर आता है और प्रकाश की ओर बढ़ने लगता है। उसे प्रकाश चाहिए। यदि अंधेरे घर में रखा जाय और एक खिड़की से प्रकाश आने दिया जाय, तो वह पौधा खिड़की की ओर बढ़ना शुरू करेगा। कभी जीवन बचाने के लिए ईंट की दीवार में से भी नमी लेने के लिए पौधों को अपनी जड़ों का अद्भुत विस्तार करते हुए देखा जाता है। जीवन के लिए संघर्ष की प्रवृत्ति ही चैतन्य की न्यूनतम अभिव्यक्ति है। प्रयागराज में किले के अन्दर देखा जाता है एक वट वृक्ष जिसे मुगलों ने कटवाकर एक अत्यधिक मोटे लोहे के तवे से ढँक दिया था। कटे हुए वृक्ष ने तवे को फाड़कर अपना रास्ता बना लिया था। यही जीवन है, ब्रह्म चेतना का विकास है।

एक चींटी या मक्खी या मच्छर को इतना हल्के से स्पर्श करें कि वह मरे नहीं, पर चल भी न सके, तो देखेंगे कि वह अपने जीवन को बचाने के लिये कितना बलवान हो उठता है, संघर्ष करता है। केंचुआ तेज सूर्य का प्रकाश पड़ने पर मिट्टी की गहरी सतहों में नीचे चला जाता है और अपने प्राण की रक्षा करता है। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि एक छोटा-सा कीड़ा रेल की पटरी पर पड़ा हुआ था। उसी पटरी पर एक विशाल शक्तिशाली इंजिन तीव्र गति से आ रहा था। उसके पहियों के नीचे आने पर इस कीड़े की गति क्या होगी, आप जानते ही हैं। शायद उसका चिह्न तक न रहेगा। पर जैसे ही पटरी में कंपन हुआ, कीड़ा पटरी से उतर जाता है और उसके प्राणों की रक्षा हो जाती है। चींटी, मच्छर, मक्खी और कीड़ा सभी में अपने प्राणों की रक्षा के लिए एक संघर्ष देखा जाता है। यह संघर्ष ही जीवन है, ब्रह्म चेतना की न्यूनतम अभिव्यक्ति है। इन सब सूक्ष्म प्राणियों में वही ब्रह्म अभिव्यक्त हो रहा है। यही जीवित रहने की कामना ब्रह्म के अनन्त अस्तित्व और उसके अविनश्वर स्वभाव के कारण ही है। अनन्त जीवन का अधिकारी वह जीव अपने अधिकार एवं सत्य स्वरूप को न जानते हुए भी अमर रहने की कामना करता है।

डारविन के सिद्धान्त में अमीबा से मानव तक की विकास यात्रा के दो कारण बताए हैं। एक तो जीवित रहने के लिए संघर्ष और दूसरा survival of the fittest – योग्यतम की उत्तरजीविता, जो क्षमता प्राप्त करता है वही बचता है। इसी सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए हम कहते हैं – एक छोटा सा बुद्बुदा भी जीवन को केवल बचाने के लिए ही संघर्ष नहीं करता, बल्कि और अधिक विकसित, अधिक बलवान, अधिक क्षमता पाने के लिए प्रयास करता है। यही कारण है कि डारविन के क्रम-विकास के अनुसार एक अमीबा से आज मानव तक की यात्रा उसने तय कर ली है, क्योंकि वह पूर्ण ब्रह्म है, असीम है। असीम होने का प्रयास ही बताता है कि क्षुद्र प्राणी में भी सीमाओं और बन्धनों को तोड़कर असीम, अनन्त एवं मुक्त होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। यही ब्रह्म चेतना का अस्तित्व क्षुद्र से क्षुद्र जीव में भी देखा जाता है।

जलचर, थलचर, नभचर सभी जीवों में तथा उद्भिज स्वदेज, अण्डज एवं जरायुज सभी प्रकार के जीवों में देखा जाता है कि वह अपनी संतान के प्रति मातृ-प्रेम रखता है। पक्षी अपने अंडों की रखवाली प्राण की बलि देकर भी करता है। बच्चे होने पर कहाँ-कहाँ से खाना लाकर बच्चे के मुख में देता है। पशुओं में भी अपनी सन्तान के प्रति मातृभाव विकसित हो चुका है। यह प्रेम ही उस ब्रह्म का अंश है, यह अनन्त निष्काम प्रेम भी एक न्यूनतम

अभिव्यक्ति है। ब्रह्म अनन्त प्रेम है और अनन्त प्रेम ही ब्रह्म है। मानव में ब्रह्म भाव की अभिव्यक्ति उसके बड़े-बड़े कार्यों से जानी जाती हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विभिन्न क्षेत्रों में महान कार्य चकित कर देने वाले हैं। इन सभी कार्यों को करने की बुद्धि, उसी ब्रह्म चेतना की वह सूक्ष्मतर अभिव्यक्ति है।

किन्तु एक अमीबा से लेकर मनुष्य तक वह ब्रह्म होते हुए भी अपनी अनन्तशक्ति, क्षमता और स्वरूप से परिचित नहीं रहता। वह 'आहार निद्रा भय मैथुनं च' इन चार प्रवृत्तियों को ही जीवन समझता है। तब तक उसमें और पशु में कोई भेद नहीं, परन्तु जब मनुष्य पशु-स्तर से उठकर अपने विवेक से काम लेता है तो उसे यह आभास होने लगता है कि उसके महान कार्यों से जगत में परिवर्तन हुआ, यह बड़ी चीज है, परन्तु जब वह इतने से सन्तुष्ट नहीं होता, उसे शान्ति नहीं मिलती, तो अपने भीतर अन्तर्निहित असीम सम्भावनायें, अनन्त जीवन, अनन्त ज्ञान और परमसुख के महान भण्डार की खोज में रत होता है। वह अनुभव करता है – **अल्पे सुखं नास्ति यो वै भूमा तत्सुखम्,** भौतिक जगत में प्राप्त अद्‌भुत उपलब्धियाँ क्षणिक और अस्थायी हैं, उसे तो अनन्त की उपलब्धि में ही शान्ति मिलेगी, तब अनन्त के अनुसन्धान में वह भीतर की खोज करता हुआ अपने ब्रह्म स्वरूप का अनुभव कर तीनों गुणों और तीनो अवस्थाओं से उठकर परमतत्त्व परब्रह्म का अनुभव करता है और ब्रह्म की चरम अभिव्यक्ति कर लेता है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म

ब्रह्म ही एकमात्र सत्ता है, बाकि सब तो मिथ्या स्वप्नवत है। अर्थात् यह सृष्टि, जड़-चेतन प्रकृति के विभिन्न स्वरूप सब उसी प्रकार हैं, जैसे स्वप्न में प्रत्येक प्राणी का मन उसके लिए संसार बनाता है। किन्तु नींद टूट जाने पर सोने वाला रह जाता है और स्वप्न में उत्पन्न सृष्टि उसी के मन में लीन हो जाती है। किन्तु जब तक स्वप्न देखता है तब तक उसके लिए वह भी सत्य है।

प्रश्न उठता है कि यदि ब्रह्म ही है और सृष्टि मिथ्या तो उस सृष्टि का प्रयोजन क्या है? **लीलावत्तु कैवल्यं,** यह तो उनका खेल है। जैसे मकड़ी अपने मुख से लार निकालकर जाल बनाती है, उस जाल में रहती है, घूमती है और फिर उसे अपने भीतर समेट लेती है। वैसे ही ब्रह्म अपनी ही प्रकृति का आश्रय लेकर सृष्टि करता है। ब्रह्म कुछ नहीं करता, उसकी प्रकृति अपने नियमानुसार तीन गुणों के मिश्रण से सारी सृष्टि करती है।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं –

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।९/१०।।

'हे अर्जुन ! मुझ अधिष्ठाता के सान्निध्य से प्रकृति चराचर जगत को रचती है और इसी से यह संसार-चक्र घूम रहा है।''

ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अजन्मा, नित्य, अकर्ता, अनादि, अनन्त है। कालातीत ब्रह्म कुछ भी नहीं करता। उसका ऐश्वर्य तो यही है कि उसकी प्रकृति (माया) उसके सान्निध्य से उस अधिष्ठाता के प्रभाव से सक्रिय हो उठती है और ब्रह्माण्ड की सृष्टि करती है।

यह ब्रह्म सृष्टि के पूर्व अकेला ही होता है। संसार की सृष्टि होती है, प्रलय होती है। संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है, नाशवान है, किन्तु यह ब्रह्म ही अपरिवर्तनीय और अविनाशी है।

यह ब्रह्म अपरिवर्तनीय, अजन्मा, निर्गुण निराकार होते हुए भी सृष्टि में समाया हुआ रहता है। उसमें समाया हुआ होते हुए भी उससे पृथक है। कैसे? उसने सृष्टि, स्थिति प्रलय को प्रकृति के नियमों में बाँध रखा है। इस प्रकृति को ही हम साधारण भाषा में महामाया, देवी भगवती, इत्यादि नाम से जानते हैं और स्तुति करते हैं –

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तुते।।

'सृष्टि-स्थिति-संहार की शक्तिरूपिणी सनातनी त्रिगुण की आधारभूता और त्रिगुणमयी, हे नारायणी तुम्हें प्रणाम है।'

प्रकृति उस ब्रह्म के सान्निध्य में उसकी शक्ति स्वरूपा होकर क्रियाशील होती है। ब्रह्म न हो, तो प्रकृति और उसके नियम भी नहीं रहेंगे। जैसे जादूगर के होते हुए जादू होता है और चुम्बक के सान्निध्य में लोहा भी चुम्बक हो जाता है और चुम्बक हटाने पर भी निष्क्रिय होकर लोहा ही रह जाता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।७-७।।

"हे धनञ्जय! मुझसे भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत माला में उसके मणियों के सदृश मुझमें गुंथा हुआ है।' वह ब्रह्म ही सब कुछ बना है। जिस प्रकार स्वर्णालंकार में सोना ही हार, चूड़ियाँ, करधनी इत्यादि बनता है। इन वस्तुओं के रूप चाहे जो कुछ भी हों, है तो सोना ही। मिट्टी के घड़े, खपरा, गिलास, फूलदानी, मूर्ति इत्यादि बनती है, उसी मिट्टी से दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, महिषासुर, रावण बनता है, पर सब है तो मिट्टी, उसी प्रकार नानारूप सृष्टि में जो दिखायी दे रहे हैं, हैं तो ब्रह्म ही। कैसे? **तस्य भासा सर्वमिदं विभाति** – उसके रहते सारे संसार का अस्तित्व है। सूर्य तो जलती हुई गैस है, किन्तु वह शक्ति के आधार पर किस कारण से एक ही स्थान में अपनी सीमा में बद्ध है। वह बिखरकर फैल क्यों नहीं जाता? यह पृथ्वी, चन्द्र, तारे, नक्षत्र सभी घूम रहे हैं आकाश में। उनकी गति निर्दिष्ट सीमा में ही क्यों है? वे आपस में टकरा क्यों नहीं जाते? आज का विज्ञान कहेगा कि केन्द्राभिमुखी एवं केन्द्रापसारी शक्ति के कारण ये सब अपनी-अपनी निर्दिष्ट सीमा में घूमते हैं। उस शक्ति का स्त्रोत कहाँ है? वही ब्रह्म शक्ति है।

जमीन में बीज पड़ता है, उससे अंकुर निकलता है, पौधा बनता है, वृक्ष बनता है, पत्ते फूल, फल और अन्त में बीज में परिणत होता है। वैज्ञानिक इसे जीव विज्ञान से बताते हैं। परन्तु वह कौन-सी शक्ति है जो इन सब परिवर्तनों का कारण है? विद्वान लोग कहते हैं प्राण शक्ति। ब्रह्म इसी प्राण का भी प्राण है। पशु, पक्षी, मनुष्य सभी में यह प्राण शक्ति उसके भौतिक शरीर, उसके अवयव जैसे हृदय, फेफड़े और अँतड़ियों का संचालन करती है, उसके मन, बुद्धि और चित्त का संचालन करती है। प्राण निकले तो केवल पुतला ही रह जाता है। यह सब प्रकृति के नियम से होता है और इस प्रकृति का संचालन इस ब्रह्म के सान्निध्य से ही होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी जीवों में ब्रह्म ही है या व्यक्त हो रहा है, तो उसकी सेवा में ही शिव की सेवा है। ○○○

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२८६. जिसे न दे भगवान, उसे क्या देगा सुलतान

सुलतान निजामुद्दीन ने जब मस्तराम नामक एक फक्कड़ साधु की ख्याति सुनी, तो वह भेष बदलकर एक बैलगाड़ी में बैठकर उससे मिलने गया। रास्ते में उसे खड़ा देखकर सुलतान ने बैलगाड़ी रोकी और पास का तरबूज देकर वापस लौट गए।

दूसरे दिन भेष बदलकर एवं बैलगाड़ी में सवार हो, वे उससे मिलने फिर से गये। मस्तराम को उसी जगह खड़ा देख सुलतान ने उससे कहा, "लगता है भीख माँगना तुम्हारी आदत-सी हो गई है।" मस्तराम ने कहा, "मैं किसी से भीख नहीं माँगता, खुदा जो भी रूखा-सूखा देता है उसी से मैं खुश हूँ। फकीर की एक लंगोटी और रोटी के अलावा कोई ख्वाहिश नहीं होती।" सुलतान ने पूछा, "कल मैंने जो तरबूज दिया था, क्या उसमें सोने के सिक्के नहीं मिले? मैंने तुम्हें इतना धन दिया था कि तुम अपनी जिंदगी ऐशो आराम के साथ बिता सकते थे।' मस्तराम ने हँसते हुए कहा, कल रास्ते में मैंने एक गरीब व्यक्ति के हाथ एक छोटा तरबूज देखा, तो अपना बड़ा तरबूज उसे देकर उसका तरबूज ले लिया। उसकी एक फाँक खाकर और पानी पीकर मैंने सुख में रात बिताई। जिसे न दे भगवान, उसे क्या देगा सुलतान। सोने के सिक्के मेरे किस काम के? जिस प्रकार बचे तरबूज को मैंने गरीबों को बाँट दिया, उसी प्रकार सिक्के दिखाई देने पर मैं उन्हें भी बाँट देता।" यह कह कर मस्तराम आगे बढ़ गया।

सच्चा साधु दूसरों से किसी भी चीज की अपेक्षा नहीं करता। उसे जो भी मिलता है, उसी से वह सन्तुष्ट रहता है।

एक किसान सारा दिन गन्ने के खेत में पानी सींचने के बाद जब खेत में गया, तो उसने देखा कि खेत में एक बूँद भी पानी नहीं पहुँचा है। उस खेत में कई बड़े-बड़े बिल थे; उनमें से होकर सारा पानी दूसरी ओर बह गया था। इसी प्रकार, जो साधक विषय-वासना और संसार के मान-अपमान की ओर ध्यान देते हुए साधना करते हैं, वे सारा जीवन ईश्वर की उपासना करने पर भी अन्त में यह देखते हैं कि उन वासनारूपी बिलों के द्वारा उनकी सम्पूर्ण चेष्टाएँ व्यर्थ हो जाती है। – श्रीरामकृष्ण देव

साधक-जीवन कैसा हो? (११)

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

अभी जो मैं आपसे निवेदन कर रहा हूँ, यह तो कुछ मिनटों में कर रहा हूँ, किन्तु व्यवहार में लाना बहुत कठिन है। लेकिन कितना भी कठिन हो, अभ्यास करने वालों के लिये सरल हो जाता है। समय सापेक्ष है, पर होगा। आइए हम अन्तर्यात्रा प्रारम्भ करते हैं। रेलगाड़ी में हमको यात्रा करनी हो, तो रेलगाड़ी की यात्रा करने के लिये हमको रेलवे स्टेशन जाना पड़ेगा। यदि किसी दिन आप रेलमन्त्री हो जायँ और घर तक रेल लेकर आ जायँ, तो अलग बात है। किन्तु सामान्यत: स्टेशन जाना ही पड़ेगा। किसी रेलवे स्टेशन पर जाकर रेल पकड़ें, जहाँ से सुविधा है। हम नागपुर के मुख्य स्टेशन पर जायँ। वहाँ १५ मिनट मेल रुकती है, आराम से चढ़ लें, सामान रख लें। किन्तु यदि मुझे कुबुद्धि हो जाय और कामटी चले जायँ, तो क्या होगा? कामटी मात्र २ मिनट गाड़ी रुकती है। हम गाड़ी में चढ़ने के लिए दौड़कर जा रहे हैं, हाँफ रहे हैं। दौड़ने में गाड़ी आगे बढ़ी, सामान पीछे गिर गया। किसी तरह चढ़े, पास वाले से पूछते हैं, अच्छा भाई गोंदिया कितनी दूर है। तब तक किसी ने कहा, अरे महाराज, ये गाड़ी गोदिंया नहीं जा रही है, ये तो अकोला जा रही है। अब आपके पास समय नहीं है कि गाड़ी उतरकर दूसरी गाड़ी पकड़ें। इतनी चंचल मनोदशा में अन्तर्यात्रा नहीं हो सकती।

स्टेशन का अर्थ है रुकना ठहरना। अन्तर्यात्रा करने के लिये थोड़ा समय देना चाहिये। अपने पास कुछ समय रखना चाहिए। समय का जीवन में बहुत महत्व है। किन्तु अब उसकी चर्चा नहीं करेंगे, कल भी दो व्याख्यान हैं।

सामान्यत: हम सोचें कि हमारे लिये सबसे नजदीक का स्टेशन कौन-सा है? अजनी स्टेशन सबसे नजदीक है, किन्तु वहाँ पर गाड़ी रुके तब तो। वहाँ हमारी गाड़ी रुकती ही नहीं है और हम वहाँ बैठकर अपना समय खराब कर रहे हैं। इसका तात्पर्य क्या हुआ?

इसका तात्पर्य यह हुआ कि जैसे नागपुर बड़ा स्टेशन है, वैसे हमारा रामकृष्ण मठ या जहाँ आपकी रुचि हो, वह मठ या साधन का स्थल हमारे लिए अधिक उपयोगी होगा। जहाँ बहुत से लोग साधना के विचार से साथ आते हैं और आकर प्रयत्न करते हैं, ऐसे स्थान पर जाएँगे, तो हमारा मन साधना की दिशा में जाएगा। हम दूसरों से परिचय कर सकेंगे और आपस में बातचीत कर अपने मन को समझकर अन्तर्यात्रा में प्रवेश कर सकते हैं।

सबके जीवन में यह सौभाग्य नहीं होता है। किन्तु यदि ऐसे कोई गुरुजन, श्रेष्ठ व्यक्ति हमारे जीवन में मिल जाएं, जिनके सामने हम अपने हृदय की बातें कह सकें, अपना हृदय खोलकर रख सकें और वे भी मुझे न अच्छा समझें, न बुरा समझें, जैसा मैं हूँ उस रूप में मुझे स्वीकार कर लें, तो यह परम सौभाग्य ही है। ऐसे सौभाग्यशाली दम्पतियों को मैं जानता हूँ। जिनके जीवन में कोई कपट नहीं है, उनका मन काँच की तरह पारदर्शी है। पति स्वप्न में नहीं सोचता कि पत्नी मुझसे कोई बात छिपाई है। पत्नी स्वप्न में कल्पना नहीं कर सकती कि पति ने मुझसे कोई बात छिपाई होगी।

इसी प्रकार साधक-साधिका का जीवन भी सहज होना चाहिये। सहजता के लिये पारदर्शिता बहुत आवश्यक है। हमारे जीवन में पारदर्शिता आएगी, तो अन्तर्यात्रा सहज हो जाएगी, हम सरलता से भीतर जाकर देख सकेंगे कि कहाँ कुटिलता, कपट, छिपाव है, कहाँ घमण्ड, छल-छद्म है। जब हमारा मन पहले हमसे पारदर्शी हो, तभी तो हम दूसरों से पारदर्शी हो सकेंगे। मेरे मन में यह पारदर्शिता तो हो कि मैं काजू छिपाकर नहीं खाऊँगा, चने या दोनों मिलाकर खाऊँगा। वही बताऊँगा कि काजू और चना मिलाकर खा रहा हूँ। अपनी-अपनी वृत्तियों के विषय में

हमको परीक्षा कर के समझना पड़ेगा कि हम कहाँ कितनी कपट करते हैं। इसे मुझे छोड़कर कोई दूसरा मुझे नहीं बता सकेगा। हममें से प्रत्येक को स्वयं देखना पड़ेगा कहाँ मन पारदर्शी है और कहाँ पारदर्शी नहीं है। पारदर्शिता बहुत अच्छी बात है, पर पारदर्शिता का अर्थ यह नहीं है कि हम भरे बाजार में अपने सारे गुणों-दुर्गुणों का ढिंढोरा पिटते फिरें। पारदर्शिता में भी विवेक की आवश्यकता होती है। विवेकपूर्वक पारदर्शिता होनी चाहिये। ये बातें प्रत्येक को अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार समझनी चाहिये।

मैंने पहले आप से निवेदन किया था कि बहिर्मुखी यात्रा अनन्त है। वह कहीं नहीं पहुँच सकती, आज तक कोई नहीं पहुँचा। रावण, हिरण्यकशिपु और नहीं आधुनिक सम्राट गण ही पहुँच सके। अच्छा-बुरा कोई भी व्यक्ति बाहर की यात्रा में कहीं नहीं पहुँच सका। उसे विवश होकर मृत्यु के मुख में जाना पड़ा। बाहर की यात्राओं का कोई अन्त नहीं, किन्तु भीतर की यात्रा का अन्त है।

भीतर की यात्रा का अन्त कहाँ होगा? जहाँ से भीतर और बाहर दोनों यात्राएँ प्रारम्भ होती हैं, उस बिन्दु पर। जैसे गंगोत्री से माँ गंगा निकलती हैं।

उसी प्रकार जिस दिन हम अपने भीतर की यात्रा में धीरे-धीरे प्रवेश करते जाएँगे, तो एक दिन ऐसा समय आएगा कि साधक अपने विचारों एवं भावनाओं के स्रोत में पहुँच जाएगा, जहाँ से अच्छे-बुरे विचार निकल रहे हैं। विचारों के स्रोत में पहुँचकर विचारों को रोकना बड़ा सहज हो जाता है। सभी साधक-साधिकाओं को विचार के उस उत्स में पहुँचने का प्रयत्न करना है। जैसे बहनें-बेटियाँ दही को मथकर मक्खन निकालती हैं, वैसे ही हमें अपने मन का मन्थन करना है।

जब हमारे विचार, हमारे चिन्तन, हमें अपनी चक्की में पीस रहे हैं, तब क्या करें? जैसे हम बाहर की यात्रा की एक सीमा, एक स्थान निर्धारित करते हैं। वैसे भीतर की भी एक लक्ष्मण रेखा खींच दें। निश्चित लक्ष्य रखें, उसकी धारणा करें। साधक-साधिका के जीवन में आवश्यक सुविधाएँ हों, वह भिखारी या भिखारिन न हो, किन्तु विलासिता न हो। राजा जनक का उदाहरण देना बहुत अच्छी बात है। पर एक दिन में कोई जनक नहीं हो जाता। श्रीरामकृष्ण देव ने ही कहा हम सबको विलासिता से बचना चाहिये। किन्तु उसे दूसरों पर नहीं थोपना चाहिये। आप गृहस्थ हैं, आपका परिवार है। यदि आप बलपूर्वक दूसरों को तथाकथित विलासिता से मुक्त करेंगे, तो इससे कलह होगा, संघर्ष होगा तथा जीवन अशान्त हो जाएगा।

यदि हम अपने हृदय से, मन से विलासिता छोड़ सकेंगे, तो परिवार के दूसरे लोगों को स्वतः प्रेरणा मिलेगी। हम सुविधापूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं तो करें, किन्तु दूसरों को सुधारने के चक्कर में न पड़ें, स्वयं को सुधारें। विलासिता से बचने का एक बहुत अच्छा उपाय है आवश्यकता-आधारित जीवन। हमें विलासिता और आवश्यकता पर विचार कर उसके भेद को समझना चाहिए।

कई बार हम विलासिता से तथाकथित बचने के प्रयत्न में आवश्यकताओं के विरुद्ध भी लड़ने लगते हैं। वह ठीक नहीं है। आवश्यकताओं की पूर्ति तो होनी चाहिए, पर उसमें विलासिता न प्रवेश करे, इस पर ध्यान देना चाहिये। कुछ ऐसे व्यक्तियों को मैं जानता हूँ, जो प्रवचन या कहीं देख-सुनकर आवेश में बहुत से निश्चय कर लेते हैं – हम कड़ी खाट पर सोएँगे। क्यों सोएँगे? तो वे कहते हैं कि उन्होंने अमुक स्वामीजी या मित्र को कड़ी खाट पर सोते देखा है। यह उनके लिये ठीक है, पर आप उनका अनुकरण न करें । आप अपनी स्थिति को देखकर निर्णय लीजिए। यदि गद्दे की आवश्यकता है, तो गद्दा बिछा कर उस पर आराम से सो लीजिए। यह सहजता है। किन्तु गद्दे में मखमल की खोल विलासिता है। हमें भीतर और बाहर की विलासिता से बचने का सर्वप्रथम स्वयं से प्रारम्भ करना चाहिये। हमें बार-बार अपने मन को याद दिलाते रहना चाहिए – मैं व्यक्तिगत जीवन में विलासिता से मुक्त रहूँगा। धीरे-धीरे ऐसा करते रहें। जब हम ऐसा करने लगेंगे, तो हमारे जीवन में हमको भीतर से मार्गदर्शन मिलने लगेगा। यह मार्गदर्शन सबको मिल सकता है। भगवान श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, अन्त में अपना मन ही हमारा गुरु हो जाता है, मन ही मार्गदर्शन करता है। किन्तु यह मन नहीं, हमारा शुद्ध मन ही ऐसा करता है। **(क्रमशः)**
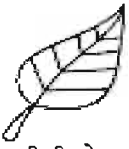
स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

६६. देवता और असुर का आत्मज्ञान

एक देवता और एक असुर आत्मज्ञान प्राप्त करने एक ऋषि-आचार्य के पास गये। वे काफी काल तक उनके पास रहकर विद्या अर्जित करते रहे। अन्त में आचार्य ने दोनों से कहा, "तुम लोग जिसकी खोज कर रहे हो, वह तुम स्वयं हो।"

दोनों ने सोचा कि उनकी देह ही आत्मा है। वे पूर्णत: सन्तुष्ट होकर अपने-अपने राज्य में लौट गए और बोले, "हमें जो कुछ सीखना था, वह सब हम सीख आए। अब खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ, क्योंकि हम स्वयं ही वह आत्मा हैं, हमसे परे अन्य कुछ भी नहीं है।"

उस असुर का स्वभाव अज्ञान से परिपूर्ण था, अत: इस विषय में उसने अधिक सोच-विचार नहीं किया, बल्कि स्वयं को ही ईश्वर समझकर वह पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो गया। उसने यही समझा कि 'देह' को ही 'आत्मा' कहते हैं।

परन्तु देवता का स्वभाव कहीं अधिक पवित्र था। उसने भी पहले भ्रान्तिवश यही समझा कि यह शरीर-रूपी 'मैं' ही ब्रह्म है, अत: इसे स्वस्थ तथा सबल रखना, सुन्दर वस्त्र आदि पहनना और इसे सब प्रकार के भोग प्रदान करना ही कर्तव्य है। परन्तु कुछ दिनों बाद उसे यह बोध होने लगा कि ऋषि के उपदेश का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता, देह से भी उच्चतर कुछ अवश्य होगा।

अत: वह लौट आया और आचार्य से फिर पूछा, "महाराज, क्या आपने मुझे यही सिखाया था कि यह देह ही आत्मा है? यदि ऐसा हो, तो मैं सभी शरीरों को नष्ट होते हुए देखता हूँ, परन्तु आत्मा तो अमर और अविनाशी है।"

आचार्य ने कहा, "तुम स्वयं इसकी खोज करो, तुम स्वयं वही हो – तत्त्वमसि।"

तब देवता ने सोचा, जो प्राण शरीर में क्रियाशील हैं, शायद उसी के सन्दर्भ में आचार्य ने पूर्वोक्त उपदेश दिया था। वे वापस लौट गए। परन्तु शीघ्र ही देखा कि भोजन करने पर प्राण तेजस्वी रहते हैं और न करने पर दुर्बल होने लगते हैं। तब उन्होंने पुन: आचार्य के पास जाकर कहा, "प्रभो, आपने क्या प्राणों को आत्मा कहा है?"

आचार्य ने कहा, "तुम स्वयं इसका अनुसन्धान करो, तुम वही हो – तत्त्वमसि।"

उस अध्यवसायी शिष्य ने आचार्य के आश्रम से लौटकर सोचा, "तब तो शायद मन ही आत्मा होगा।" किन्तु वे शीघ्र ही समझ गए कि मनोवृत्तियाँ अनेकों प्रकार की हैं; मन में कभी अच्छी वृत्तियाँ उठती हैं, तो कभी बुरी और इतना परिवर्तनशील मन कदापि आत्मा नहीं हो सकता।

वे फिर आचार्य के पास लौटकर बोले, "मुझे तो नहीं लगता कि मन आत्मा है। क्या आपका वही तात्पर्य था?"

आचार्य ने कहा, "नहीं, तुम वही हो – तत्त्वमसि। तुम स्वयं इसकी खोज करो।"

देवता पुन: वापस लौटे; और (चिन्तन करते हुए) अन्त में उन्हें बोध हुआ – "मैं स्वयं ही समस्त मनोवृत्तियों या विचारों के अतीत वह एक तथा अद्वितीय आत्मा हूँ, मेरा न जन्म होता है, न मृत्यु; मुझे न तलवार काट सकती है, न आग जला सकती है; मुझे न वायु सुखा सकती है, न जल गला सकता है; मैं अनादि और अनन्त हूँ, अचल, अस्पर्श, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आत्मा हूँ। आत्मा न तो शरीर है और न ही मन; यह तो इन सबके परे है।"

इस प्रकार वे देवता आत्मज्ञान पाकर सन्तुष्ट हो गए, परन्तु उस बेचारे असुर को सत्य-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई, क्योंकि वह देह में अत्यन्त आसक्त था।

इस संसार में बहुसंख्य लोग ऐसे ही असुर-स्वभाव के हैं; परन्तु कुछ देव-प्रकृति के लोग भी हैं। यदि कोई एक ऐसी विद्या सिखाने का दावा करे, जिससे इन्द्रिय-सुख के अनन्त गुना बढ़ जाने की सम्भावना हो, तो असंख्य लोग इसके लिये तैयार मिलेंगे। परन्तु यदि कोई मानव-जीवन के चरम लक्ष्य – ईश्वर-प्राप्ति की विद्या सिखाना चाहे, तो उसकी बातें सुनने वाले अति अल्प लोग ही मिलेंगे। बहुत कम लोगों में उच्च तत्त्व को धारण करने की क्षमता देखने को मिलती है और सत्य की उपलब्धि के लिये धैर्यवान लोगों की संख्या तो और भी विरल है। (१/५२-५३)

अंग्रेजी सीखने की इच्छा और परिश्रम

उस जमाने में हर किसी की इच्छा अंगेजी पढ़ने की होती थी। अंग्रेजी पढ़ने के लिए गाँव के लोग लालायित रहते थे, क्योंकि सरकारी बड़े-बड़े पदों पर कामचलाऊ अंग्रेजी की आवश्यकता रहती थी। अण्णासाहेब के मुरुड गाँव में किसी सज्जन को अपने लड़के को अंग्रेजी सिखाने की इच्छा थी। किन्तु गाँव में उसकी व्यवस्था नहीं थी। बाहर किसी अध्यापक को बुलाकर उसका सम्पूर्ण खर्च उठाने में वे सक्षम नहीं थे। गाँव के लोगों ने एक-दूसरे से सलाह कर यह निश्चित किया कि वे सज्जन अंग्रेजी अध्यापक को अपने घर आश्रय देंगे और उसके भोजन-पानी की व्यवस्था करेंगे। गाँव के अन्य लोग अपने बच्चों को भी अंग्रेजी सिखाने के लिए वहाँ भेजेंगे और अध्यापक के वेतन की भी व्यवस्था करेंगे। इस तरह गाँव में अंग्रेजी पाठशाला का शुभारम्भ हुआ। अण्णासाहब ने भी अठारह वर्ष की आयु में ए. बी. सी सीखना आरम्भ किया। वहाँ उन्होंने यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया।

अंग्रेजी भाषा का अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे अपना गाँव छोड़कर रत्नागिरि हाईस्कूल में पढ़ने गए। वहाँ उनकी तबीयत अच्छी नहीं रहती थी और उन्हें फिर से गाँव आना पड़ा। यहाँ उन्हें पाँच रुपये मासिक वेतन पर नौकरी करनी पड़ी। सात घण्टे पाठशाला में काम करने के बाद जो समय बचता था, उसमें वे अंग्रेजी पढ़ते थे। नौकरी करके वे पैसे जमा करना चाहते थे, ताकि वे मुम्बई जाकर और भी अंग्रेजी की पढ़ाई कर सकें।

मुम्बई में अण्णासाहब के कुछ परिचित लोग थे, उन लोगों की सहायता से वे मुम्बई रहने लगे। वे दिखने में बहुत दुर्बल थे और प्रारम्भिक अवस्था में थोड़े डरपोक भी थे। इस कारण बहुत बार गलतफहमी के शिकार हो जाते थे।

वे मुम्बई के मनी-स्कूल में पढ़ते थे। वहाँ हर दूसरे महीने परीक्षा ली जाती थी। ऊँची श्रेणी में उत्तीर्ण होने वालों को पुरस्कार के रूप में कुछ रुपये मिलते थे। अण्णासाहब इस पुरस्कार को कभी हाथ से जाने नहीं देते थे। इसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपनी अंग्रेजी लिखावट में भरपूर सुधार किए थे। कुछ विद्यार्थी लोग उनसे ईर्ष्या रखते थे। अंग्रेजी के अध्यापक ने जब अण्णासाहब की अंग्रेजी लिखावट की कापी देखी, तो उन्होंने उस पर 'गुड' लिखा। किन्तु एक ईर्ष्यालु विद्यार्थी ने एक दूसरे विद्यार्थी दामले की कापी अध्यापक को दिखायी और कहा कि अण्णासाहब ने इसकी सहायता ली है।

दामले ने स्पष्ट कहा कि उसने अण्णासाहब की बिल्कुल भी सहायता नहीं की है। कक्षा में केवल अंग्रेजी में ही बोलना पड़ता था। अण्णासाहब तो अपने लजीले स्वभाव के कारण कुछ बोल ही नहीं पाते थे। उन्होंने मार खाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया।

अंग्रेजी-अध्यापक को कुछ शंका हुई और उन्होंने अण्णासाहब से पूछा, 'क्या तुम फिर से इसे लिख सकते हो?' उसने हामी भरी और फिर से लिखा। तब जाकर अध्यापक को सन्तोष हुआ।

अण्णासाहब अंग्रेजी की पाँचवी कक्षा में पढ़ते थे। इसके साथ वे अपने मित्र के छोटे भाई का ट्यूशन भी लेते थे, इससे उनको महीने का एक रुपया मिलता था। इसके अलावा वे एक सज्जन के यहाँ हर रविवार को समाचार पत्र पढ़ते थे। इसके बदले उन्हें २ आने मिलते थे। शिक्षा के प्रति उनकी इतनी रुचि थी कि वे किसी भी कठिनाई को सहने के लिए तैयार थे।

स्वयं इतना कष्ट उठाकर भी वे दूसरों की सहायता करने के लिए नि:संकोच पैसे खर्च कर देते थे। वे स्वयं इतने गरीब थे कि पैसे कमाकर अपनी पढ़ाई का खर्च पूरा करते थे। इसके बावजूद भी उन्होंने सोचा कि वे एक रुपये में से एक पैसा दान के लिए रखेंगे। इस तरह जब तीन रुपये जमा हो गए, तो उन्होंने एक गरीब होटल वाले को उसके बुरे समय में वे पैसे दे दिये।

कुछ समय बाद अण्णासाहब को पता लगा कि उसकी हालत और भी गम्भीर हो गई है। वे तुरन्त दस रुपये लेकर उसके घर पहुँचे। अण्णासाहब को देखकर गरीब होटलवाला चिन्ता में पड़ गया और उसने पूछा, 'क्या तुम

(शेष भाग पृष्ठ ५६६ पर)

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

प्रश्न ३५. स्वामीजी, 'नैराश्यं परमं सुखम्' का भावार्थ क्या है? राजीव रंजन

उत्तर – सर्वप्रथम हमें इस श्लोक के सन्दर्भ को ज्ञात कर उसके परिप्रेक्ष्य में इसका वास्तविक तात्पर्य जानना चाहिए। यह श्लोक श्रीमद्भागवत (११ स्कन्ध, ९ स्कन्ध, श्लोक ४४) का है। अवधूत के २४ गुरुओं में एक पिंगला नामक वैश्या का भी उल्लेख है। यह बड़ी मार्मिक घटना है। पिंगला एक रात किसी धनी व्यक्ति के आने की आशा में रातभर प्रतीक्षा करती हुई तड़पती रही। अन्त में उसे यह बोध हुआ कि अपनी इस दुराशा के कारण ही मुझे इतना कष्ट हो रहा है। अन्त में उसे वैराग्य हो गया। वह इसे भगवान की कृपा मानते हुए कहती है – **त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम्** – मैं विषय-भोगों की दुराशा को छोड़कर अधीश्वर भगवान की शरण लेती हूँ। अन्त में भागवतकार कहते हैं – **आशा हि परमं दुखं नैराश्यं परमं सुखम् –** विषय-भोग की कामना, इच्छा व्यक्ति को सदा दुख देते हैं। इस दुराशा के त्याग से ही परम सुख मिलता है।

प्रश्न ३६. विवेक को सक्रिय रखकर दैनिक जीवन में अपने व्यक्तित्व को ऊर्जा से परिपूर्ण कैसे रखें, जिससे आलस्य न हो? दीपेश देवांगन, चाम्पा

उत्तर – विवेक को सक्रिय रखने पर ही हमारा व्यक्तित्व ऊर्जा से परिपूर्ण हो सकता है। विवेक के शिथिल होने पर सर्वांगीण व्यक्तित्व विघटित और ऊर्जाहीन हो जाता है। अत: सदा विवेक को जाग्रत रखें।

प्रश्न ३७. हम ऐसा क्या कार्य करें, जिससे हमें लोग याद रखें और आदर से नाम लें? धनेश्वर, चाँपा

उत्तर – शुद्ध पवित्र और नि:स्वार्थ जीवन के द्वारा सेवा करते हुए हम दीर्घकाल तक स्मरण किए जाएँगे।

प्रश्न ३८. भ्रष्टाचार से कैसे बचें? धनेश्वर साहू

उत्तर – भ्रष्टाचार व्यक्ति में होता है। व्यक्तियों का समूह ही समाज कहलाता है। अत: जिस समाज में बड़ी संख्या में शिष्टाचार सम्पन्न तथा नि:स्वार्थ सेवाभावी लोग होंगे, तभी भ्रष्टाचार दूर हो सकेगा। इसका कोई लघु मार्ग - शार्ट-कट नहीं है।

प्रश्न ३९. सकारात्मक सोच को कैसे बनाए रखें? राजा साहू, बिलासपुर

उत्तर – अन्धकार को दूर करने के लिए हमें प्रकाश की व्यवस्था करनी चाहिए। उसी प्रकार सकारात्मक सोच को बनाए रखने के लिए नकारात्मक सोच को यथाशीघ्र त्यागना चाहिए। इससे हमारा सकारात्मक भाव सदा बना रहेगा।

प्रश्न ४०. क्या गृहस्थ को भी अपनी इच्छाओं एवं कामनाओं को कम करना चाहिए? राकेश कुमावत

उत्तर – गृहस्थ को ही क्यों समाज में जो भी व्यक्ति निर्द्वन्द्व और सुखी रहना चाहता है, उसे धीरे-धीरे अपनी इच्छाओं एवं कामनाओं को संयमित करना चाहिए।

भारत की संतान

पं. चेलादास वैष्णव, दुर्ग

छोटे-छोटे हम सब बच्चे भारत की संतान हैं।
अपने देश के हम भविष्य हैं, हम भारत की शान हैं।।
हमें कोई नादान न समझे, भरत शेर से खेले हैं।
उनके मुँह में हाथ डालकर दाँत गिने अकेले हैं।।
वीर पवनपुत्र हनुमान और लव-कुश जैसे वीर हैं।
दुष्ट दुश्मनों को मार गिराएँ बहादुरों के तीर हैं।।
भारत के हम वीर सपूत दशरथनन्दन श्रीराम हैं।
अपने देश के ...
बालरूप हनुमानजी मुख पर सूरज को रखते हैं।
यशोदानन्दन बन अंगुली पर गोवर्धनगिरि धरते हैं।।
कालिया नाग नाथकर उनके सिर पर नाचा करते हैं।
दम्भी कंस को सिंहासन से खिंचकर मारा करते हैं।।
हम बच्चे सब चक्र-सुदर्शन मनमोहन घनश्याम हैं।।
अपने देश के ...
हम होनहार हैं बड़े बहादुर भारत माँ के प्यारे हैं।
भारत के सन्तान टीपू-राणा-शिवा के न्यारे हैं।।
चन्द्रशेखर बन्दा बैरागी गुरु गोविन्द की सन्तान हैं।
आजाद भगत सिंह और बिस्मिल बोस सुभाष महान हैं।।
हँस-हँसकर हम देश के लिए हो जाते बलिदान हैं।
हम सब नन्हे-मुन्हें बच्चे भारत की सन्तान हैं।।

कालीतत्त्व

स्वामी विनिर्मुक्तानन्द

रामकृष्ण मठ, कोची

ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं : वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टिकोण

भगवान श्रीरामकृष्ण देव इसी गुह्य तत्त्व को सहज, सरल, भाषा में कहते हैं, "ब्रह्म और शक्ति अभिन्न हैं, जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति। आद्याशक्ति लीलामयी सृष्टि-स्थिति-प्रलय करती है। जो ब्रह्म है, वही आद्याशक्ति है। जब वह निष्क्रिय है, तब ब्रह्म है और जब सक्रिय है तब वही प्रकृति कहलाती है।" गीता के नवम् अध्याय के सातवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है, –

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।

अर्थात्, हे कौन्तेय ! कल्पक्षय में जब प्रलय होता है तब सर्वभूत मेरी त्रिगुणात्मिका प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। पुन: कल्पारंभ में जब सृष्टि होती है, तब मैं सर्वभूतों की स्थूल-सूक्ष्मादि भेद से सृष्टि करता हूँ।

विष्णु और वायु पुराण के मतानुसार मनु से कल्प का प्रारम्भ हुआ है। इस कल्प में ब्रह्माण्ड की सृष्टि लगभग १५०० करोड़ साल पहले हुई। अब प्रश्न आता है कि तब सृष्टि के प्रारम्भ में क्या था? वेद, उपनिषद के काल से आज तक यही प्रश्न गम्भीर रूप से प्राज्ञ मन को प्रभावित करता आ रहा है। वर्तमान काल के cosmologists कहते हैं कि सृष्टि के पहले किसी का भी अस्तित्व नहीं था। आकाश एवं काल का भी अस्तित्व नहीं था। ऋग्वेद एवं उपनिषदों में भी इसी मत की पुष्टि होती है। जैसे घट की उत्पत्ति के पहले मात्र मृत्तिकापिण्ड ही था, ऐसे ही अभिव्यक्त होने के पहले समग्र जगत हिरण्यगर्भ में अवस्थित था। केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में गवेषणारत विख्यात खगोलशास्त्री सर फ्रेड्रिक हाओले (Frederik Hoyle) ने गणित की सहायता से प्रमाणित करके दिखाया है कि प्राक्सृष्टि पर्व में एक विश्वव्यापी चेतना का अस्तित्व था। यह (Universal Consciousness) विश्वव्यापी चेतना क्या है? वेद, उपनिषद इसी विश्वव्यापी चेतना को हिरण्यगर्भ – महापुरुष कहते हैं। वह एक, अद्वितीय, अखंड, नित्यमुक्त और परमपुरुष है। वह एक ही साथ क्षर एवं अक्षर, सत् तथा असत, कूटस्थ अर्थात् चेतन द्रष्टा है। १५०० करोड़ साल पहले इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि एक विशाल विस्फोट से हुई थी। पाश्चात्य विज्ञान के मतानुयायी इसी को बिग-बेंग थियरी कहते हैं। बिग-बेंग से ही आकाश की उत्पत्ति हुई और यही आकाश (स्पेस) शक्ति (एनर्जी) के माध्यम से पूर्ण हुआ। इसी शक्ति के घनीभूत रूप को विश्वविख्यात वैज्ञानिक आईन्स्टाईन कहते हैं, mass । उनके मतानुसार energy और mass परस्पर परिपूरक हैं। $e=mc^2$ यहाँ e है energy और m है mass (द्रव्यमान)। आईन्सटाईन की इस वैज्ञानिक व्याख्या को यदि दार्शनिक मत में परिवर्तित करें, तब यही सिद्धान्त सामने आता है कि शक्ति ही सृष्टि का कारण है। शक्ति ब्रह्म से उत्पन्न हुई है और ब्रह्म शक्ति से। इसी शक्ति को हम परमा-प्रकृति कहते हैं। सृष्टि, स्थिति, प्रलय का कारण है शक्ति। विज्ञान की दृष्टि से शक्ति का घनीभूत रूप हुआ है mass । चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और जगत से शुरू कर विश्व-चराचर का दृष्ट एवं अदृष्ट सभी इसी mass के अंश हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि energy अर्थात् शक्ति से ही ब्रह्माण्ड की सृष्टि हुई है। चैतन्य से शक्ति का प्रकाश हुआ, इसी को हम चित्-शक्ति या जीवन की चेतनशक्ति कहते हैं।

काली का स्वरूप – महाकाली के पैरों तले देवाधिदेव शंकर निष्क्रिय होकर पड़े हैं। इसी ब्रह्म से आविर्भूता आदिशक्ति या ब्रह्मशक्ति रूपी सगुणब्रह्म को ही वेद, पुराण, तन्त्र में काली कहा गया है। तन्त्र के शिव-शक्ति, वैष्णवों के राधा-कृष्ण, सांख्य के पुरुष-प्रकृति और cosmologist की consciousness और primiveal energy सब एक ही है। जो बहुत दूर है, जिसको कोई पकड़ नहीं सकता, कोई नाप नहीं सकता, वह है काल। काल शब्द से काली की उत्पत्ति हुई। महाकाल के साथ जो रमण करती है, वही है काली। तंत्रशास्त्र में माँ के जिन अनन्त रूपों के बारे में वर्णन है, उन्हीं अनन्त रूपों में एक रूप है काली। वही दशमहाविद्या की सर्वप्रथम

विद्या है। बड़ा ही रहस्यमय नाम है काली। महानिर्वाणतन्त्र (४.३०) में कहा गया है – **कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः।** (४.३०)

अर्थात् जो सर्वभूत को कलन वा ग्रास करता है वह है काल। उस काल का जो ग्रास करे, वह है काली है। महानिर्वाणतन्त्र (४.३१-३२) में ही कहा गया है –

महाकालस्य कलनात् तमाद्याकालिकापरा।
काल संग्रहणात् काली सर्वेषामादिरूपिणी।
कालत्वात् आदिभूतत्वात् आद्याकालीति गीयते।

अर्थात् काल को जो कलन वा ग्रास करती है, खंड-विखंड करती है, विभाजित करती है, नियंत्रित करती है और प्रत्येक जीव की समय-सीमा निर्धारित करती है, वही आद्या काली है। महाकाल को ग्रास करती है इसीलिए देवी, आदिभूता सनातनी हैं। 'तव रूपम् महाकालो जगत् संहारकारक:।'' (महानिर्वाणतन्त्र, ४.२२) जगत संहारकारी महाकाल भी तुम्हारा ही एक रूप है। **''कालनियंत्रणात् काली तत्त्वज्ञानप्रदायिनी।** (कालीतन्त्र–११.१८) अर्थात् तुम कालनियन्त्रिणी तत्त्व ज्ञानदायिनी काली हो। **''सृष्टेरादौ त्वमेकासीत् तमोरूपं अगोचरम्।''** (महानिर्वाणतंत्र - ४.२५) अर्थात् सृष्टि के पूर्व में तमोरूप में एकमात्र तुम्हीं विद्यमान रहती हो। तब तुम्हारा रूप वाक्यमनातीत होता है। अर्थात् महाप्रलय के समय सब कुछ ध्वंस कर कालशक्ति, काली में लीन हो जाती है। तब तमोमयी आद्याशक्ति महाकाली ही एकमात्र विद्यमान रहती हैं।

सचमुच यह एक बड़ा रहस्य है। जो अपने स्वामी भगवान शिव की निंदा सुनकर अग्नि में देह प्रज्वलित करती हैं और वही फिर शिवजी को स्वामी के रूप में प्राप्त करने के लिए कठोर पंचतपा करती हैं, तत्पश्चात् वही शिवजी की छाती के ऊपर अपना चरण रखकर नाचने लगती हैं। काल की कलनकर्त्री बनकर वही शक्ति महाप्रलय के समय महाकाल को भी उदरस्थ करती हैं। अर्थात् महाकाल तब महाप्रकृति रूपा महाकाली में एकीभूत हो जाता है। काली केवल सती या पार्वती के रूप में शिवजी की अर्धांगिनी नहीं हैं, वह शिवजी की नियन्त्रिणी एवं परिचालिका भी हैं। कहा गया है – **सैव माया प्रकृतिर्या संमोहयति शंकरम्।** (महानिर्वाणतंत्र - ४.२७) शिवजी महामाया की माया में मोहित हो जाते हैं। इसीलिए देवाधिदेव महादेव उनकी महाशक्ति को परम श्रद्धावश अपने हृदय में धारण कर उन्हीं (काली) की ओर देखते हुए निष्क्रिय शववत् पड़े हैं। महानिर्वाणतन्त्र (४.२८) के मतानुसार **'कलयति प्रक्षिपति नाशयति जगत् इति काली महती सर्वसंहन्त्री चासौ सा चेति।''** अर्थात् जो जगत का नाश करती हैं, जो महान सर्वसंहार करती हैं, वही काली हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव साधक कवि रामप्रसाद का एक प्रचलित गीत गाकर काली का तत्त्व भक्तों को समझाते थे – **के जाने रे काली केमन, षडदर्शने ना पाए दर्शन .. महाकाल जेनेछेन कालीर मर्म अन्य के वा जाने तेमोन'** अर्थात् काली को कौन जान सकता है? षड्दर्शन भी उनका वर्णन नहीं कर सकते। फिर कहते हैं एकमात्र महाकाल ही काली का मर्म जानते हैं, दूसरा कोई वैसा नहीं जान सकता। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने एक बार ब्राह्म-समाजवादी केशवचन्द्र सेन को कालीतत्त्व समझाते हुए कहा था, ''काली आद्याशक्ति ! लीलामयी, सृष्टि-स्थिति-प्रलय कारिणी, काली ही ब्रह्म और बह्म ही काली।'' ठाकुर 'कालिका पुराण' की बात को अपनी सहज-सरल भाषा में समझाते हुए कहते हैं, सृष्टि-स्थिति-प्रलय ही काल के नियम हैं। प्रलय के बाद फिर दुबारा सृष्टि होती है। सृष्टि के पीछे एक विराट पुरुष की सर्जन इच्छा विद्यमान रहती है। यह विराट पुरुष कौन है? वही है ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप ब्रह्म। पर ब्रह्म अकेला क्या कर सकता है? उसकी इच्छा है, **''एकोऽहम् बहुस्याम्''।** **'इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुवर्णो गुरुत्माम्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।'** (ऋग्वेद - १.१.९४.४९) मैं एक से अनेक होऊँगा। पर बीज कहाँ है? बीज स्त्रीशक्ति के पास है। इसीलिए ब्रह्म त्रिगुणात्मिका प्रकृति के माध्यम से माया का खेल खेलता है।

कुलार्णवतन्त्रशास्त्र में वर्णित है, **''महाँश्चासौ कालः कालग्निरुद्रः संहारक महाकालः तस्येयं स्त्री महाकाली।''** अर्थात् सर्व संहारकारी महाकाल की पत्नी महाकाली हैं।'' **''मृत्युर्जिह्वा महामारी जगत् संहारकारिणी महारात्री महानिद्रा महाकाली अतितामसी।''** अर्थात् यही महाकाली, महामाया की

तामसी शक्ति से महाप्रलय के समय समग्र ब्रह्माण्ड का संहार करती हैं। प्रश्न आता है अरूपा ब्रह्मस्वरूपिणी, अनन्तशक्तिमयी, आद्याशक्ति क्यों रूप धारण करती हैं? तन्त्रशास्त्र कहते हैं, साधारण जीव महाकाली के अरूप तत्त्व को समझ नहीं सकते। इसीलिए माँ कृपावश रूप धारण करती हैं। कुलार्णव-तन्त्र में है –

अरूपं भावनागम्यं परंब्रह्म कुलेश्वरी।
अरूपां रूपिणीं कृत्वा कर्मकाण्डरताः नराः।

साधकों की साधना में सहायता करने के लिए कृपा कर माँ रूप धारण करती हैं। वस्तुत: परब्रह्म आद्याशक्ति रूपातीत हैं। भगवतीगीता में हिमालय को माँ कहती हैं –

अनभिज्ञाय रूपन्तु स्थूलं पर्वतपुंगव।
अगम्यं सूक्ष्मरूपं मे यद्दृष्ट्वा मोक्षभाग्भवेत।।
तस्मात् स्थूलं हि मे रूपं मुमुक्षुः पूर्वमाश्रयेत्।।
(४.१९-१७)

अर्थात् हे पर्वतश्रेष्ठ ! मेरे स्थूल रूप के अनुध्यान के बिना मेरा सूक्ष्मरूप अगम्य है। मेरे सूक्ष्म रूप के अनुभव से ही जीव की मुक्ति होगी। इसलिये मुमुक्षु साधक मेरे स्थूल रूप का आश्रय लेकर साधना करें।' तब हिमालय ने माँ से पूछा, 'हे माँ, संसार में तुम्हारे स्थूल रूप बहुत हैं, उनमें से किस रूप से तुम शीघ्रातिशीघ्र प्रसन्न होती हो?'

माँ भगवती हिमालय से कहती हैं –

शक्त्यात्मकं हि मे रूपम् अनायासेन मुक्तिदम्।
समाश्रय महाराज ततो मोक्षमवाप्स्यसि ।। (४.३४)

मेरी शक्तिरूपिणी मूर्ति साधकों को शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति प्रदान करती है। इसीलिए तुम मेरी शक्तिमूर्ति की उपासना करो।'

शक्तिमूर्ति का स्वरूप कैसा है? निरुक्त-तन्त्रशास्त्र में कहा गया है – **सर्वासां सिद्धविद्यानां प्रकृतिर्दक्षिणा प्रिये** – समस्त विद्याओं में सभी विद्याओं की प्रकृति या कारण दक्षिणा काली हैं। दक्षिणाकाली आदिरूपा साक्षात् कैवल्यदायिनी हैं। दूसरी महाविद्या इसी महाकाली के भिन्न-भिन्न रूप हैं। योगिनीतन्त्र के दूसरे पटल में भगवान शिव कहते हैं –

महामहाब्रह्मविद्या विद्येयं कालिका मता।
यामासाद्य च निर्वाणमुक्तिमेति नराधमः।।
अस्या उपासकाश्चैव ब्रह्मा विष्णु शिवादयः।।

अर्थात् माँ काली महामहाब्रह्मविद्यास्वरूपिणी हैं। काली उपासना से महा पापी-तापी भी निर्वाण प्राप्त करते हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी कालीरूप की ही उपासना करते हैं। कुब्जिकातन्त्र में कहा गया है कि काली बहुत शीघ्र ही फलप्रदान करती हैं – **कालिका मोक्षदा देवी कलौ शीघ्रफलप्रदा।** पिच्छिलातन्त्र में भी मिलती है –

कलौ काली कलौ काली नान्यदेवः कलौ युगे।

माँ काली शीघ्रातिशीघ्र साधकों को फल प्रदान करती हैं और कलियुग में एकमात्र काली ही सदा जाग्रत देवी हैं। महानिर्वाणतन्त्र (७,८६) में भगवान शिव कहते हैं –

श्रीआद्या कालिका मन्त्राः सिद्धमन्त्राः सुसिद्धिदाः।
सदा सर्वयुगे देवि कलिकाले विशेषतः।।

सर्वकाल में आद्याकाली का मन्त्र नित्यसिद्ध है। दूसरे मन्त्र की तरह इसे सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

देवी भागवत की प्रसिद्ध कहानी है शिवहीन दक्ष-यज्ञ की। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए शिवपत्नी सती ने शिवजी से अनुमति माँगी थी। पर भगवान शिव शिवहीन यज्ञ का परिणाम जानते थे, इसीलिए उन्होंने अनुमति नहीं दी। सती स्वयं भी जानती थीं कि आगे क्या होने वाला है। फिर भी काल की गति को नहीं रोकते हुए वे पितृगृह जाने के लिए हठ करने लगीं। जब शिवजी राजी नहीं हुए तब देवी सती ने अपनी शक्ति की असीम लीला शिवजी को दिखाई। भगवान शिव जब भय-संत्रस्त होकर भागने लगे तब देवी सती दस दिशाओं में दशमहाविद्या के रूप में शिवजी के सामने प्रकट हुईं। यही दस मूर्ति दश-महाविद्या के नाम से संसार में सुप्रसिद्ध हैं।

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा।।
बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एता दश महाविद्या सिद्धविद्या प्रकीर्तिता।
(चामुण्डातन्त्र-४.२२-२३)

दशमहाविद्या की पहली विद्या है काली। इसे दक्षिणा काली वा श्यामा काली भी कहते हैं। जनश्रुति है बंग देश में एक तन्त्रिक साधक श्री कृष्णानन्द आगम वागीश ने

काली मूर्ति के इस प्रचलित रूप की कल्पना करके पूजा की थी। तत्पश्चात् यही काल्पनिक मूर्ति दक्षिणाकाली और श्यामा काली के नाम से प्रसिद्ध हुई।

देवी घनघोरवर्णा, आलुलायित केशिनी, त्रिनयना, दिगम्बरी हैं। देवी-कण्ठ में पचास श्वेत-पीत-रक्त और कृष्ण वर्ण की मुण्डमाला है। कमर में पीत वर्ण की नरकरवेष्टित कमरबंधनी है। देवी चतुर्भुजा हैं। उनके वाम हस्तद्वय में रक्तरंजित खड्ग और नरमुण्ड और दक्षिण हस्तद्वय में अभय और वरमुद्रा है। माँ का दक्षिण चरण शवरूप में शायित ऊर्ध्वमुखी महादेव के हृदय के ऊपर स्थापित है और वाम चरण पीछे की तरफ है। देवी करालवदना और लोलजिह्वा हैं। देवी के मुख की दोनों ओर गलित रक्त धारा बह रही है और दोनों कानों में दो मृत शिशु के कर्णाभूषण हैं। देवी का मुखमण्डल भयंकर तथा करुणा का अद्भुत सम्मिश्रण है। देवी के चारों ओर शिवा-वाहिनियाँ उच्चस्वर में देवी की जयध्वनि कर रही हैं। देवी दक्षिणा काली की यह मूर्ति बहुत प्रचलित है। दक्षिणा काली से साधक चतुर्वर्ग फल की कामना करते हैं। विद्वत् जन दक्षिणा काली के और भी कई अर्थ निकालते हैं। एक मत है दक्षिण दिशा यम अर्थात् मृत्यु का द्वार है। यम दक्षिण द्वार के अधिपति हैं। यमराज इन्हीं काली के डर से दक्षिण द्वार छोड़कर भाग जाता है। जो कोई भक्त दक्षिणा काली की आराधना करते हैं, वे सदा के लिए मृत्युभय से मुक्त हो जाते हैं। महानिर्वाण तन्त्र में इस विषय में सविस्तार वर्णन है। देवी सभी भक्तों को फल सिद्धि रूपी दक्षिणा प्रदान करती है, इसीलिए इनका नाम हुआ दक्षिणा काली।

दक्षिणा काली के अतिरिक्त और भी कई रूपों में माँ काली का पूजन किया जाता है। मार्कंडेय पुराण (१.४९) में कहा गया है –

नित्येव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयताम् मम।।

अर्थात् महामाया शाश्वत, जगद्व्यापिनी, जगन्मयी, सर्वभूतस्वरूपिणी होकर भी नए-नए कार्य सिद्ध करने हेतु विभिन्न विग्रह धारण करके आविर्भूत होती हैं। दश महाविद्या रूप में आविर्भूत होने के पूर्व भी माँ एक अन्य रूप धारण कर के लीला की थी। मार्कंडेय पुराण में इसके बारे में सविस्तार वर्णन है। तत्त्वत: देवी कालातीत और उत्पत्तिरहित हैं। फिर भी सबका कारण हैं – **निमित्तमात्रम् तद् ब्रह्म सर्वकारणकारणम्** (महानिर्वाणतन्त्र, ४.२९) और सभी प्राणियों की शक्ति हैं – **वर्तते सर्वभूतस्य शक्तिः**। इसके अतिरिक्त देवों की कार्यसिद्धि और जीवों के दुख-नाश हेतु अनेकों रूपों में अवतरित होती हैं – **देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं भूतानां दुःखनाशाय नानारूप धरा देवी नानाशक्ति समन्विता। आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी।** (मार्कण्डेय-पुराण - १.४८)

काली के विभिन्न नाम-रूप

महाकाली – मार्कण्डेय पुराण में महाकाली का वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है। मधुकैटभ का विनाश कर ब्रह्मा की रक्षा हेतु देवताओं ने जिस देवी की स्तुति की थी, वही देवी महाकाली के नाम से सुप्रसिद्ध हैं। इसी देवी ने योग निद्रा बनकर पालनकर्ता नारायण को भी गहरी निद्रा में सुला दिया था। महाकाली के दस मुख, दस हाथ और दस चरण हैं। शरीर की कान्ति नीलकान्त मणि के समान उज्ज्वल है। प्रत्येक मुखमण्डल में तीन-तीन आँखें हैं। दाँत भी उज्ज्वल और सुस्पष्ट हैं। देवी के सर्वांग नाना आभूषणों से आभूषित हैं। देवी अपने दसों हाथों में खड्ग, बाण, धनुष, शंख, चक्र, गदा, त्रिशूल, परिघ, भुशुण्डी आदि धारण की हुई हैं। यह देवी वैष्णवी माया के नाम से भी सुप्रसिद्ध हैं।

अष्टभुजा काली – तन्त्रसार और महाकाल संहिता में अष्टभुजा काली का रूप विस्तार से वर्णित है। माँ पंचवदना, महारुद्ररूपिणी, पंचदशनेत्रा, शक्ति, त्रिशूल, धनुषबाण, खड्ग-ढाल, वर और अभयमुद्राधारिणी अष्टभुजा सर्वालंकारविभूषिता हैं। महाकाल इनकी सदा वन्दना करते हैं। **(क्रमशः)**

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा (गुजरात) की है। यह आश्रम स्वामी विवेकानन्द के पवित्र स्मृतियों से जुड़ा हुआ है। स्वामीजी ने अपने परिव्राजक जीवन में १८८२ ई. में यहाँ वास किया था। यहाँ ध्यान-मन्दिर, सार्वजनिक पुस्तकालय, मोबाइल मेडिकल यूनिट तथा धार्मिक व्याख्यानों का आयोजन किया जाता है। स्वामीजी के जीवन और सन्देश पर स्थायी प्रदर्शनी भी लगाई गई है।

मन क्रम बचन करेहु सेवकाई

बालकृष्ण कुमावत, उज्जैन

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लक्ष्मणजी के चरित्र को समर्पित सेवक के चरित्र के रूप में दर्शाया है। जहाँ भरत प्रेम की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं, वहाँ लक्ष्मण सच्चे सेवक की भूमिका में खरे उतरते हैं। जब भगवान श्रीराम वन को प्रस्थित होने लगे, तो लक्ष्मण अधीर हो उठे और उन्होंने प्रभु की सेवा में रहने के लिये दृढ़ संकल्प कर लिया। वे माता सुमित्रा से प्रभु श्रीराम के साथ वन जाने के लिए आज्ञा लेने जाते हैं। माताजी सहर्ष स्वीकृति ही नहीं, अपितु इसे समस्त पुण्यों का फल भी निरूपित करती हैं –

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं ।दूसर हेतु लाग कछु नाहीं।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम सीयपद सहज सनेहू ।। [१]

वे कहती हैं – जब तक श्रीरामजी अयोध्या में रहे, तब तक सब का भाग्य रहा, सबको दर्शन होते रहे, सबको सेवा मिलती रही । वन में तुम्हारा ही भाग्य है, सब सेवा तुम्हीं को प्राप्त हुई। ऐसा ही वाल्मीकि रामायण में सर्ग ४० में पुरवासियों ने कहा हैं –

अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम् ।
भ्रातरं देवसकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि ।
महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान् ।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि ।। [२]

अर्थात् अहा लक्ष्मण ! तुम धन्य हो, तुम्हारे मनोरथ सिद्ध हुए, जो तुम प्रियवादी देवसदृश भ्राता की सेवा करोगे। तुम्हारी बुद्धि प्रशंसनीय है। तुम्हारे भाग्य का बड़ा भारी अभ्युदय हुआ, जो तुम साथ जा रहे हो। यह तुम्हारे स्वर्ग का अर्थात् सर्वाधिक सुख का मार्ग है। श्रीसीताराम-चरणानुराग होना ही सबसे बड़ा फल है। गीता में भी कहा है –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

वन में प्रभु के साथ जाने की अनुमति माता सुमित्रा से प्राप्त हो जाने पर लक्ष्मणजी के हर्ष की सीमा नहीं रही। जाते समय माता सुमित्रा ने उन्हें जो उपदेश दिया, वह उपदेश मानव मात्र के लिये उपयोगी है। सेवा करते समय हमें किन-किन विकारों से बचना है। सेवा मन, वचन और कर्म से होनी चाहिये, सेवक में प्रमाद नहीं हो और स्वामी को तनिक भी क्लेश न हो आदि, बातें सेवक को सदैव अपनानी चाहिए। गोस्वामीजी निम्न पंक्तियों में माता सुमित्रा के माध्यम से सेवा के आवश्यक तत्त्वों का वर्णन करते हैं –

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहूँ इन्ह के बस होहू ।।
सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ।।
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु रामु सिय जासू ।।
जेहि न रामु बन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसु ।। [३]

इन पंक्तियों में सेवक का धर्म निरूपित किया गया है। सेवक को पाँच बातों के वश स्वप्न में भी नहीं होना चाहिये – राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद (घमण्ड) तथा मोह। सब प्रकार से विकारों को त्यागकर मन-कर्म-वचन से सेवा करनी चाहिये। माता सुमित्रा ने लक्ष्मणजी को यह आश्वासन भी दिया कि निर्विकार भाव से एवं पूर्णतः समर्पित होकर सेवा करोगे, तो तुम्हें वन में सब तरह से सुख होगा। तुम्हारे संग पिता-माता श्रीराम-सीताजी हैं। अर्थात् माता-पिता लड़के को हर तरह का आराम देते हैं, तुम्हें अपने आराम की चिन्ता वहाँ नहीं करनी पड़ेगी। हे पुत्र ! तुम वही करना, जिससे श्रीरामजी वन में क्लेश न पाएँ।

राग (सांसारिक प्रेम), क्रोध, ईर्ष्या (डाह), मद और मोह ये सब सेवा में, राम की भक्ति में बाधक हैं। इनसे सदैव बचते रहना चाहिये। अन्यत्र इसकी पुष्टि करते हुए मानस में कहा गया है –

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यानधाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ।। [४]

श्रीमद्भगवद्गीता के १६वें अध्याय में भी इसी बात को रेखांकित किया गया है कि जो व्यक्ति इन नरक के द्वारों से बच जाता, वही परम गति को प्राप्त कर सकता है –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्येजत् ।।
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ।। [५]

काम, क्रोध तथा लोभ, ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करनेवाले हैं। अतएव इन्हें त्याग देना चाहिये। जो पुरुष इनसे मुक्त हो अपने कल्याण का आचरण करता है, वह परम गति को जाता है अर्थात् परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।

राग के वश न होने का भाव यह है कि श्रीसीता-रामजी को छोड़ अन्य किसी में प्रेम नहीं करना है। रोष के वश न होने का भाव यह है कि श्रीराम-सीताजी जो आज्ञा दें, वह यदि तुम्हारे मन के अनुकूल न भी हो, तो भी कदापि रुष्ट

न होना। लक्ष्मणजी ने इसे प्रमाणित भी किया है। देखिये – माता के उपदेश पर वे कैसे दृढ़ रहे हैं। '**मरम बचन सीता जब बोला**' और '**जनक सुतहि परि हरेऊ अकेली। आएहुँ तात बचन मम पेली**' पर लक्ष्मणजी रुष्ट होकर कुछ भी न बोले, क्योंकि क्रोध आने से सेवा भंग हो जाएगी। इस बात का ठीक ध्यान रखा। ईर्ष्या के वश न होने का भाव यह है कि किसी समय किसी भी कारण से यह बात मन में न आए कि श्रीरामजी भी राजकुमार हैं और मैं भी राजकुमार हूँ, दोनों बराबर हैं, तो हम सेवा क्यों करें? मद के वश न होने का भाव यह है कि कभी भी जाति, विद्या, बल आदि का गर्व न हो, ऐसी भावना कभी भी न आए कि मेरे अतिरिक्त कौन इनका रक्षक या सेवक है। मोह के वश न होने का भाव यह है कि घर का कभी भी मोह नहीं रहे।

उपर्युक्त पाँच विकारों के अलावा अन्य विकारों का त्याग करने के लिये भी माता सुमित्रा ने पुत्र लक्ष्मण को आदेश दिया। अर्थात् सब प्रकार के विकारों को छोड़कर मन, कर्म तथा वचन से सेवा हो इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना सेवक का सच्चा धर्म होता है। **मन की सेवा** यह है कि सेवा के समय का ध्यान बना रहे। **वचन की सेवा** का आशय यह है कि मन की बात रखकर अनुकूल आज्ञा माँगना और उसे पूरा करना। सदैव प्रिय, मधुर, प्रेममय वचन बोलना। **कर्म से सेवा** का तात्पर्य प्रत्यक्ष सेवा करना है। माता सुमित्राजी ने लक्ष्मणजी को यह भी निर्देश दिया कि वन में श्रीराम-सीताजी को कोई भी क्लेश न हो, वही उपाय तुम्हें करना है। वन में बहुत क्लेश हैं। कहा भी गया है – '**बिपिन विपति नहिं जाइ बखानी**।' पर्णशाला, भोजनशाला, पुष्पशय्या, वन के जीवों की रक्षा इत्यादि से सम्बन्धित समुचित सेवा का उपदेश इसमें निहित है।

माता सुमित्राजी को श्रीरामजी को दुख न हो, इसका कितना ध्यान है ! यह बात गीतावली से भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। अपने पुत्र लक्ष्मण को शक्ति लगने का शोक उनको नहीं है, वरन् राम अकेले हैं, इसका शोक है। वे शत्रुघ्नजी से कहती हैं कि तुम जाओ और जाकर सेवा करो। गीतावली में गोस्वामी ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है –

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभटसों, लोहे ललकारि लरे हैं।
सुवन-सोक, संतोष सुमित्रहि, रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात, छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं।।
कपिसों कहति सुभाय, अंब के अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं।।
'तात ! जाहु कपि सँग', रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं।।
अंब-अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी अब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं।।[६]

अर्थात् जब सुमित्राजी ने सुना कि लक्ष्मणजी युद्ध स्थल में घायल पड़े हैं और उन्होंने अपने स्वामी के लिये विपक्षी योद्धा मेघनाद से रणभूमि में खूब ललकार कर लोहा लिया है, तो उन्हें पुत्र की दशा से क्षणिक भी शोक न हुआ और इस बात से संतोष हुआ कि उन्होंने रघुनाथजी की भक्ति को स्वीकार किया। उनके अंग एक क्षण में सूख जाते हैं और फिर दूसरे ही क्षण में आनन्द से हरे हो जाते हैं। तब माता सुमित्रा ने नेत्रों में जल भर कर स्वभाव से ही हनुमानजी से कहा – 'रामजी कुअवसर में भाई से बिछुड़ गए, परन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं है, दूसरा भाई शत्रुघ्न तो है। यह संकेत करते हुए बोलीं, शत्रुघ्न ! तुम हनुमान के साथ जाओ।'' यह सुनकर शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर ऐसे पुलकित हो उठे, मानो सभी देव उनके अनुकूल हो गये हों। माता और छोटे भाई की यह दशा देखकर हनुमानजी और भरतजी बड़े ही ग्लानिग्रस्त हो गए। तुलसीदासजी कहते हैं – तब माता ने उन सबको समझाकर सचेत किया।

स्वामी प्रज्ञानन्दजी ने एक स्थान पर लिखा है – ''श्रीरामचरितमानस की सुमित्रा के समान माता का चरित्र अन्य किसी ग्रन्थ में तो क्या, अन्य किसी देश या भाषा में मिलना असम्भव है। अथ से इति तक सुमित्राजी के हृदय को पुत्र-विरह का स्पर्श भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने रामभक्त पुत्र को चौदह वर्ष के वनवास के लिए जाते समय भी हृदय से नहीं लगाया। धन्य है भक्त जननी और उसका 'वज्रादपिकठोर च कोमलं कुसुमादपि अन्तःकरण।'' उन्होंने अपने द्वारा कही हुई इस पंक्ति को पूर्णतः सार्थक किया –

पुत्रवती जबुती जग सोई । रघुपति भगतु जासु सुतु होई।।
नतरू बाँझ भलि बादि बिआनी। राम विमुख सुत तें हित जानी।।[७]

ऐसी माता का पुत्र लक्ष्मणजी के समान सर्वलक्षण सम्पन्न नहीं होगा तो किसका होगा? पद्मपुराण पातालखण्ड में माता सुमित्रा के सम्बन्ध में कहा गया है कि पति को प्रिय सुमित्रा अम्बाजी धन्य हैं, जिन्होंने वीर लक्ष्मण को उत्पन्न

किया, जो अहर्निश रामचरण सेवा में रत रहे –

धन्या सुमित्रा सुतरां वीरप्रसू स्वपतिप्रिया ।
यस्यास्तनूजो रामस्य चरणौ सेवतेऽन्वहम ।।[८]

लक्ष्मणजी ने अपनी माता के उपदेश का १४ वर्ष तक अक्षरश: पालन किया । उन्होंने सोचा कि जाग्रत अवस्था में तो माता की आज्ञा का उल्लंघन कदापि नहीं हो सकता । परन्तु सो जाने पर नींद में स्वप्न आने पर उक्त विकारों में से कोई भी विकार आ सकता है, इसलिये उन्होंने यह संकल्प लिया कि वे १४ वर्ष पर्यन्त सोयेंगे ही नहीं । जब नींद नहीं आएगी तो स्वप्न आने का प्रश्न ही नहीं उठता और १४ वर्षों तक उन्होंने शयन नहीं किया ।

यदि राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह इन विकारों को त्याग कर राष्ट्र की सेवा में लग जाए तो रामराज्य की स्थापना आज भी हो सकती है । ○○○

संदर्भ – १. श्रीरामचरितमानस२/७५ **२.**वाल्मीकि रामायण सर्ग ४० **३.** श्रीरामचरितमानस २/७५ **४.** वही ३/३८ (क) **५.** भगवद्गीता १६/२१ **६.**गीतावली, लंकाकाण्ड पद १३ **७.** श्रीरामचरितमानस २/७५ **८.** पद्मपुराण पातालखण्ड १/४१

(पृष्ठ ५५८ का शेष भाग)

अपने दिये हुए पैसे माँगने आए हो?' अण्णासाहब ने कहा, 'जी नहीं, उसकी चिन्ता मत करें, आप समझ लीजिए कि आपने उसे लौटा दिये हैं । मैं तो आपको ये दस रुपये देने आया हूँ ।'

अण्णासाहब के ऐसे उदारपूर्ण वाक्य सुनकर होटलवाले की आँखों से अश्रु बहने लगे । वे कहते हैं कि उस दिन परोपकार के आनन्द का जीवन में उन्हें प्रथम अनुभव हुआ ।

१८८१ ई. में उन्होंने मेट्रिक की परीक्षा पास की । वे बम्बई प्रान्त में सोलहवें नम्बर पर थे, इसलिए उन्हें बी.ए कॉलेज में प्रवेश मिल गया । कॉलेज में उन्हें आठ रुपये की छात्रवृत्ति मिलती थी । उन्होंने पढ़ने के लिए कुछ कर्ज भी लिया था । इसलिए अवकाश समय में अन्य विद्यार्थियों को पढ़ाकर उनसे प्राप्त पैसों से कर्ज को चुकाया था । १८८४ में वे द्वितीय श्रेणी में बी.ए. में उत्तीर्ण हुए । देहात का एक लड़का, जिन्होंने १८ साल की उम्र में अंग्रेजी में ए. बी. सी. सीखना शुरू किया, दस वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद वे बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर यशस्वी हुए और कालान्तर में अपने अनेक लोक-कल्याणकारी कार्यों के फलस्वरूप भारत-रत्न महर्षि कर्वे से विभूषित हुए ।

○○○

जितं सर्वं जिते रसे

संकलक - ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य, नागपुर

स्वामी गम्भीरानन्द रामकृष्ण संघ के एकादश संघाध्यक्ष थे । उन्होंने माँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और भगवान श्री रामकृष्ण देव के शिष्यों की जीवनी तथा उपनिषद, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि अनेक दुरुह संस्कृत ग्रन्थों का बंगाली और अंग्रेजी में अनुवाद किया ।

स्वामी गम्भीरानन्द जी की मन की एकाग्रता अद्भुत थी । एक छोटी-सी घटना है । बेलूड़ मठ में साधुओं को दो बार चाय दी जाती थी, सुबह नाश्ते के समय और अपराह्न ३ बजे के आसपास । मिशन कार्यालय में सेवा देने वाले साधुओं को वहीं एक कर्मचारी के द्वारा चाय भेजी जाती थी । रसोईघर में चाय बनाई जाती थी और कर्मचारी कार्यालय में चाय लेकर आता था । वह सर्वप्रथम स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज के कमरे में चाय देता और बाकी सबको बाद में ।

एकबार रसोईघर में चाय बनाने वाले रसोइए ने भूल से चाय में शक्कर के बदले नमक डाल दिया । चाय इतनी नमकीन हो गई थी कि जैसे ही कुछ साधुओं ने चाय का पहला घूँट पिया, वे तुरन्त समझ गए कि कहाँ गड़बड़ हुई है । स्वाभाविक है, उन्हें चाय फेंकनी पड़ी । जो साधु रसोईघर का कार्यभार देख रहे थे, शीघ्रता से मिशन कार्यालय आए और रसोइए की इस भूल के लिए क्षमा माँगी । उन्होंने कहा कि चाय दुबारा बनाई जा रही है और वे तुरन्त भेज देंगे ।

इसी बीच एक साधु स्वामी गम्भीरानन्द जी को यह जानकारी देने उनके कमरे में गए । उन्होंने देखा कि पूज्य महाराज जी अपनी पुरानी आराम-कुर्सी पर आँखें मूँदें बैठे हुए हैं । कभी-कभी वे आँखें बन्द कर किसी गहन विषय पर चिन्तन करते थे । साधु के प्रवेश करने पर महाराज जी ने उनसे आने का कारण पूछा । साधु ने कहा, 'महाराज जी, आपको भूल से नमकीन चाय दी गई थी । रसोईघर में दुबारा चाय बनाई जा रही है । आप कप देंगे तो पुरानी चाय फेंककर उसमें नई चाय लेकर आता हूँ ।'

महाराज जी ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, 'क्या? नमकीन चाय ! मैं तो उसे पूरा पी गया । मुझे पता ही न लगा कि उसमें नमक था !' ○○○

माँ की महिमा

डॉ. दिलीप धींग
निदेशक, अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र, चेन्नई

माँ का जिह्वा तथा लेखनी से वर्णन मुश्किल है। बोल देखिए तथा ध्यान दीजिए – 'माँ' शब्द उच्चारण करने में जिह्वा का प्रयोग नहीं होता है। गहराई से 'माँ' शब्द का उच्चारण करने पर पता चलता है कि 'माँ' शब्द नाभि से पैदा होता है, हृदय में विकसित होता है और कण्ठ से उच्चारित होता है। तात्पर्य यह है कि 'माँ' का मानव से गहरा सम्बन्ध है। नाभि शक्ति व साहस का केन्द्र है तथा माँ के गर्भ में शिशु का सम्बन्ध नाभि से होता है, जिसके माध्यम से शिशु के शरीर और संस्कारों का निर्माण होता है। ध्यान-योग में भी नाभि को जड़ (मूल) तथा शक्ति का केन्द्र माना गया है।

माँ-सन्तान के सम्बन्ध-क्रम में द्वितीय स्थान हृदय का है। जन्म के बाद शिशु माँ के हृदय से जुड़ता है। माँ अपने लाडले को तनिक भी कष्ट में नहीं देख सकती है। ज्यों ही अबोध शिशु रोता है, माँ अपनी ममतामयी गोद में ले उसे हृदय से लगा देती है और वात्सल्यभाव से उसे दूध पिलाती है। माँ-शिशु का यह हृदयगत सम्बन्ध मनुष्य में त्याग व संवेदनशीलता जैसे उदात्त मानवीय मूल्य भरता है और विश्व को प्रेम व करुणा का कल्याणकारी सन्देश देता है।

माँ – क्षमा, सहिष्णुता व तितिक्षा की साकार मूर्ति होती है। क्षमा गुण के कारण ही धरती को माँ कहा गया है, जो हमें अन्न-जल व आश्रय प्रदान करती है। महाभारत में माँ को धरती से भी भारी बताया गया है। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपने देश की भूमि को माँ कहकर श्रद्धा से उसकी वन्दना की है, जिससे स्वदेश-प्रेम जागृत हो सके। माँ सुख, समृद्धि और शुभाशीष देने वाली होती है। विद्या, धन तथा शक्ति-प्रदान करने वाली देवियों को भी माँ–स्वरूपा माना जाता है। इस प्रकार माँ रक्षा करने वाली और संरक्षण देने वाली होती है। किसी भी माँ के मन्दिर या स्थान पर अथवा माँ के नाम से निरीह, निर्दोष, मूक तथा पुत्र-तुल्य पशु-पक्षियों की बलि देना माँ, मातृत्व और मानवता के नाम पर घोर कलंक है।

असल में माँ का अर्थ ही दया, करुणा तथा प्रेम से है। इसलिए, चिन्तकों और अनुभवियों ने अहिंसा को माँ कहा है; जो प्राणि-मात्र को अभय देने वाली तथा संसार में शान्ति और सद्भावना का संचार करने वाली है। वस्तुत: माँ – अहिंसा की सेवा-उपासना से समस्त माताओं की आराधना स्वत: हो जाती है।

महापुरुषों के जीवन-निर्माण में मुख्य भूमिका माँ की होती है। माँ के पावन अंक में बड़े-बड़े विचारक, महापुरुष, ऋषि-मुनि, वैज्ञानिक, वीर सेनानी, समाजसेवी आदि खेले-पले और बड़े हुए हैं। माँ महापुरुषों के द्वारा भी पूजनीया होती है। वह देवी-स्वरूपा तथा देव व गुरु के समान वन्दनीया होती है। जिस व्यक्ति के हृदय में माता-पिता के लिए स्थान नहीं होता है, वह धर्म-ध्यान करने के लिये भी पात्र नहीं है। तीर्थंकरों के समक्ष जब कोई मुमुक्षु दीक्षा की भावना व्यक्त करता था तो स्वयं तीर्थंकर मुमुक्षु को उसके माता-पिता की अनुमति लेने के लिए कहते थे। आज भी माता-पिता की अनुमति के बाद ही जैन दीक्षा प्रदान की जाती है।

माँ को स्वर्ग से भी अधिक गरिमामय बताया गया है। मधु की मधुरता से भी वह अधिक मीठी होती है। जो अमृत माँ के नयनों में होता है, वह अन्यत्र कहाँ होता है? माँ धरती की सर्वोत्तम कविता है। माँ के लिए सारी उपमाएँ कम पड़ जाती हैं। माँ का सन्तान पर असीम उपकार होता है, जिसे चुकाना सरल नहीं है। मनुस्मृति में माँ का गौरव हजार पिताओं से भी अधिक बताया गया है। भारत-रत्न सन्त विनोबा ने कहा है – "बच्चे को शुरू के साल दो साल में जितना ज्ञान मिलता है, उतना आगे की जिन्दगी में नहीं मिल सकता। माता ही प्रथम और श्रेष्ठ गुरु है।" उत्कृष्ट मातृत्व के लिए शील, सदाचार की मर्यादाओं का सजगता से अनुपालन आवश्यक है। माँ यदि पूरे मनोयोग से सन्तान का लालन-पालन करे, उसे समुचित शिक्षण-संस्कार दे और सन्तान भी अन्तर्मन से माँ की सेवा करे, उसे सम्मान दे तो माँ और सन्तान, दोनों अमर हो जाते हैं। आज हमारी माताएँ तरह-तरह के कष्टों व संकटों से घिरी हुई हैं, जिनसे उसे मुक्त कराना प्रत्येक पुत्र-पुत्री का परम कर्तव्य है। ○○○

ॐ का अर्थ
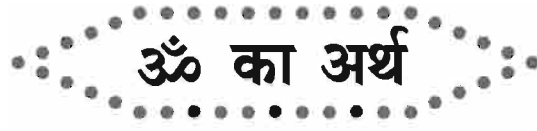
स्वामी पररूपानन्द
मातृ मन्दिर, जयरामबाटी

ॐ हमारे आध्यात्मिक जीवन का अभिन्न अंग है। प्राचीन काल से वैदिक परम्पराओं के अन्तर्भुक्त होकर ॐ अब प्रत्येक आध्यात्मिक क्रिया-कलापों में व्यवहृत होता रहता है। प्रत्येक मन्त्रों, स्तोत्रों, स्तुति आदि का आरम्भ भी ॐ से ही किया जाता है। ॐ का प्रयोग जप-ध्यान एवं प्राणायाम करते समय भी किया जाता है। इस प्रकार ॐ आध्यात्मिक जीवन एवं धार्मिक अनुष्ठानों का अपरिहार्य अंग हो गया है। परन्तु ॐ के स्वरूप का रहस्य एवं इसका प्रयोग मन्त्रों, स्तोत्रों, स्तुति आदि के आरम्भ में क्यों किया जाता है, यह जन-साधारण में अविदित ही है। इस संक्षिप्त लेख में ॐ की व्याख्या संक्षेप में की जाएगी।

हमारे वाग्-यंत्र के सबसे निचले अंश से 'अ' का उच्चारण किया जाता है। 'अ' प्रथम वर्ण भी है। ॐ के उच्चारण में 'म' का उच्चारण अन्त में किया जाता है। 'अ' और 'म' के मध्य वाणी 'उ' का उच्चारण करती हुई, लुढ़कती हुई जैसे मध्य के रिक्त स्थान को भरती हुई ओठों तक पहुँचती है। इस प्रकार ॐ ही एक ऐसा शब्द है जिसके उच्चारण में सम्पूर्ण वाक्-यन्त्र का उपयोग सबसे संक्षिप्त रूप से होता है। संक्षिप्त का अर्थ यहाँ इस प्रकार लेना होगा – अ,उ,म के उच्चारण में एवं ॐ के अन्तर्गत किसी प्रकार के विशेषण का उपयोग नहीं होता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ॐ अल्पतम विशेषभावापन्न सार्वभौमिक वाचक शब्द है। अत: यह निर्गुण, निरुपाधिक ब्रह्म का सबसे उपयुक्त प्रतीक भी माना जाता है। इसके अलावा, चूँकि ब्रह्म से ही सर्वप्रथम उसके स्वरूप या मूल तत्त्व से अव्यक्त स्वर उत्पन्न होकर ॐ के रूप में व्यक्त होता है, अत: यह ब्रह्म का सबसे उपयुक्त प्रतीक भी माना जाता है। इसलिए ॐ ब्रह्म का वाचक शब्द भी है। ॐ की उत्पत्ति स्फोट से हुई है। 'स्फोट' ॐ की अव्यक्त अवस्था को कहते हैं। तत्पश्चात् नाम-रूप से बनी इस सृष्टि की उत्पत्ति ॐ से ही हुई। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, "एकमेव यह ॐ ही इस प्रकार सर्वभावव्यापी वाचक शब्द है, अन्य कोई भी उसके समान नहीं है।"

शास्त्रों में ॐ का महत्त्व – शास्त्रों में ॐ का क्या महत्त्व है? कठोपनिषद ॐ को समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का लक्ष्य के रूप में निर्धारित करता है –

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।।१/२/ १५।।

अर्थात् समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का लक्ष्य (पद) ॐ का ज्ञान ही है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।।१६।।

– यह अक्षर ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही पर है, इस अक्षरको ही जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, उसे प्राप्त कर लेता है।

अर्थात् यह ॐ ही सगुण ब्रह्म है, और यह निर्गुण ब्रह्म है। जो साधक ॐ को सगुण ब्रह्म अथवा निर्गुण ब्रह्म जैसा जानकर साधना करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है –

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।।१७।।

यही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही परम आलम्बन है। इस आलम्बन को जानकर पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है। यहाँ आलम्बन का अर्थ आश्रय है। अर्थात् ॐ का सहारा लेकर या उसके अर्थ को ध्यान का विषय बनाकर साधक लक्ष्य तक पहुँच सकता है।

माण्डूक्योपनिषद में ॐ की व्याख्या बड़े विस्तार से मिलती है –

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।।१।।

अर्थात् ॐ यह अक्षर ही सब कुछ है। यह जो कुछ भूत, भविष्यत और वर्तमान है, उसी की व्याख्या है, यह सब ओंकार ही है। इसके सिवा जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है, वह भी ओंकार ही है।

इसी उपनिषद के आगम प्रकरण के २५ वें तथा २८ वें श्लोक में गौडपादाचार्य कहते हैं –

युञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् ।

प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ।।२५।।

– चित्त को ओंकार में समाहित करें, ओंकार निर्भय ब्रह्मपद है। ओंकार में नित्य समाहित रहनेवाले पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता है।

प्रणवं हीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम् ।

सर्वव्यापिनमोङ्कारं मत्वा धीरो न शोचति ।।२८।।

प्रणव को ही सबके हृदय में स्थित ईश्वर जाने। इस प्रकार सर्वव्यापी ओंकार को जानकर बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता है।

छान्दोग्य उपनिषद का आरम्भ ही ॐ की उपासना से होता है – **ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमिति ह्युदगायति तस्योपव्याख्यानम् ।।१।।** अर्थात् ॐ यह अक्षर उद्गीथ है, इसकी उपासना करनी चाहिए। ॐ ऐसा (उच्चारण करके यज्ञ में उद्गाता) उद्गान (उच्च स्वर से सामगान) करता है। उस (उद्गीथोपासना) की ही व्याख्या की जाती है।

आचार्य शंकर इस मन्त्र में ओमिति ऐसा कहकर ॐ को एक मूर्ति के सदृश प्रतीक मानते हैं और इसे नाम एवं प्रतीक रूप से परमात्मा की उपासना का उत्तम साधन भी कहते हैं। इस संदर्भ में भगवद्गीता में भगवान ने भी कहा है –

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।

प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।।१७/२४

अर्थात्, इसलिए वेदमन्त्रों का उच्चारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम के उच्चारण से आरम्भ होती हैं।

छान्दोग्योपनिषद के १/४/३ मन्त्र में भी ओंकारोपासना के महत्त्व को सुस्पष्ट अभिव्यक्त किया गया है – **तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजूँषि। ते नु विदित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ।।**

अर्थात् , जिस प्रकार (मछुआ) जल में मछलियों को देख लेता है, उसी प्रकार ऋक्, साम और यजु सम्बन्धी कर्मों में लगे हुए उन देवताओं को मृत्यु ने देख लिया। इस बात को जान लेने पर उन देवताओं ने ऋक्, साम और यजु सम्बन्धी कर्मों से निवृत्त होकर स्वर ॐ इस अक्षर में ही प्रवेश किया।

यहाँ स्पष्ट है कि तीनों वेदों के वैदिक कर्मों को करने पर भी मृत्यु के भय से निवृत्ति नहीं होती। अन्ततः देवताओं ने ओंकारोपासना का सहारा लिया। ॐ के महिमा को अगले (१/४/४) मन्त्र में स्पष्ट करते हुए ऋषि कहते हैं – ... **एष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन् ।।**

अर्थात्, यह अमृत और अभयरूप है, इसमें प्रविष्ट होकर देवगण अमृत और अभय हो गये थे। इसके अलावा **ओमिति ब्रह्म** (तैत्तिरीय उप. १/८/१), **ओंकार एवेदं सर्वम्** (छान्दोग्य उप. २/२३/३) इत्यादि श्रुति-वाक्य भी ॐ के स्वरूप को ही दर्शाते हैं।

वैदिक युग और पातंजल योगसूत्रों में समय का व्यवधान जितना भी हो, ॐ का महत्त्व हमेशा बना रहा। पातंजल योगसूत्र के समाधिपाद के २७वें सूत्र के अनुसार ॐ का ईश्वर के साथ वाच्य-वाचक सम्बन्ध है – **तस्य वाचकः प्रणव :**। अर्थात्, ईश्वर का वाचक प्रणव (ओंकार) है।

ईश्वर के वाचक शब्द अन्य भी हैं, जैसे भगवान, परमात्मा एवं अन्य भाषाओं के शब्द आदि। परन्तु इस विषय में स्वामी विवेकानन्द के राजयोग से (इसी सूत्र की व्याख्या से) निम्नलिखित वाक्यों को यहाँ उद्धृत करते हैं – उन सारे वाचकों का सामान्य शब्द चुन लेना चाहिए। उन सारे वाचकों का एक सामान्य आधार निकालना होगा, और जो वाचक-शब्द सबका सामान्य वाचक होगा, वही सर्वश्रेष्ठ समझा जायेगा, और वास्तव में वही उसका यथार्थ वाचक होगा। किसी ध्वनि के लिए हम कण्ठ-नली और तालु का ध्वनि के आधार रूप में व्यवहार करते हैं। क्या ऐसी कोई भौतिक ध्वनि है, जिसकी अन्य सब ध्वनियाँ अभिव्यक्ति हैं, जो स्वभावतः ही सब ध्वनियों को समझा सकती है? हाँ, ओम् (अउम्) ही वह धवनि है, वही सारी ध्वनियों की भित्तिस्वरूप है। ... भारतवर्ष में जितने विभिन्न धर्मभाव हैं, यह ओंकार उनका केन्द्र स्वरूप है। वेद के सब विभिन्न धर्मभाव इस ओंकार का ही अवलम्बन किए हुए हैं। ... भारत में धर्म के विकास की प्रत्येक अवस्था में, उसके प्रत्येक सोपान में ओंकार को अपनाया गया है, उसका आश्रय लिया गया है और वह ईश्वर

सम्बन्धी सारे भावों को व्यक्त करने के लिये व्यवहृत हुआ है। .. अन्य दूसरी भाषाओं में ईश्वर-वाचक जो शब्द हैं, उनके बारे में भी यही बात घटती है, उनमें बहुत कम भाव प्रकट करने की शक्ति है, किन्तु ॐ शब्द में ये सभी प्रकार के भाव विद्यमान हैं। अतएव सर्वसाधारण को उसे ग्रहण करना चाहिए। (विवेकानन्द साहित्य १/१/१३४)

अगले सूत्र में ॐ का जप साधना का अंग बताया गया है –**तज्जपस्तदर्थभावनम्**॥२८॥ अर्थात् प्रणव का जप (वाच्य-वाचक सम्बन्ध को बनाए हुए) ईश्वर की भावना से करना चाहिए।

यहाँ महर्षि पतंजलि, योग साधना के लिए भी ॐ का जप करते हुए ही ध्यान करने की विधि को उपयुक्त मानते हैं। स्वामी विवेकानन्द इस सूत्र की व्याख्या में कहते हैं कि – इस ओंकार का बारम्बार जप करना और उसके अर्थ का मनन करना ही, आन्तरिक सत्संग है। जप करो और उसके साथ उस शब्द के अर्थ का ध्यान करो। ऐसा करने से देखोगे, हृदय में ज्ञानालोक आएगा, आत्मा प्रकाशित हो जाएगी। (विवेकानन्द साहित्य १/१३५)

अगले सूत्र में ॐ के जप के प्रभाव को बताया गया है – **ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च**॥२९॥ उससे अन्तर्दृष्टि मिलती है और योग के विघ्नों का नाश होता है। इस ओंकार के जप और चिन्तन का पहला फल यह देखोगे कि क्रमशः अन्तर्दृष्टि विकसित होने लगेगी और योग के मानसिक एवं शारीरिक विघ्न दूर होते जाएँगे। (विवेकानन्द साहित्य १/१३६)

इस प्रकार उपरोक्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ॐ हमारे आध्यात्मिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। पूर्ण श्रद्धा एवं ठीक से उच्चारण करने से इसका अभीष्ट फल प्राप्त होगा। ॐ से जुड़े इतने तथ्य सब लोग समझें या न समझें, फिर भी इसे निश्चित रूप से अपने नित्य जीवन का अभिन्न अंग बनाने वालों की संख्या बढ़ रही है। कई देशों के अन्य धर्म के लोगों ने ॐ का उच्चारण अपने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी पाया है एवं नित्यकर्म के रूप में प्रातः काल नियमित ॐ का जापकर अपनी दिनचर्या आरम्भ करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ – भक्तियोग-स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, गीता एवं उपनिषद - गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित, पातंजल योगदर्शन – रमाशंकर त्रिपाठी

प्रेरणा की किरण

कैलू दीप से दीप जलाने लगा

श्याम कुमार पाढ़ी, चाँपा

बचपन से ही पिता का मुँह नहीं देखा था। देखा तो एक अभावग्रस्त पिछड़ेपन की सोच लिए परिवार। जो भी हो, जैसे छोटे बच्चे बस्ता लेकर स्कूल जाते, कैलू भी स्कूल जाता। स्कूल में पढ़ता, बच्चों के साथ लड़ता-झगड़ता और माँ से चिपका रहता। माँ भी उसे बहुत चाहती, क्योंकि वह सबसे छोटा था। मजदूरी से माँ जीविका चलाती थी। भाई लोग भी पेटी लेकर नाईगिरी करते, इसी से कुछ खर्च चलता। गर्मी के मौसम में नदी के रेत में खरबूजे की खेती से प्राप्त रुपयों से ऋण से मुक्ति मिलती और कुछ खर्च चलता। अपने मित्रों को आगे पढ़ाई करते देख कैलू ने भी माध्यमिक कक्षा से आगे पढ़ने की इच्छा अपने भाई से व्यक्त की। उसके बड़े भाई उसे भी पेटी पकड़कर नाईगिरी कराना चाहते थे। उनका मानना था कि पढ़ना-लिखना उनका काम नहीं है। आगे की पढ़ाई में कैलू अपने को असमर्थ पाकर उदास हो गया। सभी बच्चों को जैसे पूछते हैं, वैसे ही दादा ने उसे भी आगे की पढ़ाई के बारे में पूछा। कैलू भावुक हो कोई उत्तर नहीं दे सका। उसकी ऐसी मनोदशा देख दादा ने उसके अभिभावक से मिलकर उन्हें समझाया। पूर्वाग्रह से ग्रस्त भैया ने वही बात दुहराते हुए कहा "पढ़ाई-लिखाई करना हम लोगों का काम नहीं है।" कैलू की पढ़ने की इच्छा को देखकर दादा ने भावी जीवन में लाभ तथा संसाधन की व्यवस्था आदि बातें भैया को समझाकर मना ही लिया। कैलू को बुलाकर अपनी पढ़ाई का खर्च स्वयं निकालने के लिए और कार्य सीखने को सुझाया और उसने वैसा ही किया। किसी प्रकार का आर्थिक बोझ न पाकर भैया ने पढ़ाई के लिए मना करना भी बन्द कर दिया। अब कैलू हायर सेकण्ड्री ही नहीं, स्नातक की पढ़ाई कर अपने कुटुम्ब में सबसे शिक्षित व्यक्ति हो चुका था। आगे कुछ विशेष तकनीकी योग्यता प्राप्त कर प्लान्ट में नौकरी पा गया। कुछ दिन बाद शासकीय नौकरी मिल गई। अब उसे सरकारी आवास मिल गया, रहन-सहन का स्तर अच्छा हो गया। उसने माँ को मजदूरी कराना छुड़ाकर साथ रखकर देवी के समान उसकी सेवा करने लगा। कुछ दिनों बाद एक शिक्षित युवती से उसने विधिवत् विवाह किया। कैलू अब अपने घर तथा आसपास के युवा साथियों के समुचित विकास के लिए उन्हें उत्साहित करने लगा। वह स्वयं दीपक बनकर अन्य के जीवन को विकसित करने के लिये दीप से दीप जलाने लगा। ○○

एक भारतीय संन्यासी का चीन में परिव्रजन

स्वामी दुर्गानन्द
कुलसचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ

(गतांक से आगे)

Mount Wutai – यह चीन के चार बोधिमण्डों में से एक है। यह ३००० मी. की ऊँचाई पर बीजिंग से ४०० कि.मी पश्चिम पर Taihang पर्वत पर स्थित है और यह मंजुश्री (ज्ञान के) बोधिसत्व को समर्पित है। मैदानी इलाके से १५० कि.मी. दूर यह तीर्थक्षेत्र ५० कि.मी. लम्बी और १२ कि.मी. चौड़ी एक घाटी है। यह क्षेत्र पाँच भूभाग शिखरों से घिरा हुआ है और उनके ऊपर मन्दिर स्थित हैं।

ऐसा कहा जाता है कि हेन वंश के सम्राट मिंग ने स्वप्न में सूर्यतेज सदृश शरीर वाले एक देवता को अपने महल के सामने हवा में विचरते देखा। अगले दिन उन्होंने अपने सभासदों से पूछा, 'वे कौन देवता हैं?' सभासदों ने उत्तर दिया, 'हमने सुना है कि भारत में बुद्ध नाम के एक देवता हैं, जिनका शरीर सूर्य के तेज के समान है और वे हवा में उड़ सकते हैं, ये वही देवता हो सकते हैं।' सम्राट ने अपने राजदूत को भारत भेजा। राजदूत भारत से दो बौद्ध भिक्षु धर्मरक्षक (Zhu Falan) और कश्यप मातंग (She Moteng) के साथ चीन की तत्कालीन राजधानी Luoyang में वापस लौटे। वे श्वेत अश्व पर बौद्ध ग्रन्थ ले आए थे और अपना शेष जीवन उन ग्रन्थों के अनुवाद करने में समर्पित कर दिया। बौद्ध धर्म का चीन में यही प्रथम प्रवेश था। सम्राट ने सन् ६८ में Luoyang राजधानी में श्वेत अश्व (White House Temple) नाम से एक मन्दिर स्थापित किया, जो वर्तमान में भी अवस्थित है। इन्ही साधुद्वय के दैवीय प्रभाव के फलस्वरूप ही Mount Wutai का परिवेश आध्यात्मिक है और यह मंजुश्री बोधिसत्व का पवित्र स्थान है।

एक अन्य पौराणिक कथानुसार Wutai में प्रथम बौद्ध मन्दिर का इस प्रकार वर्णन आता है – बौद्ध भिक्षु ने हेन वंश के सम्राट को मन्दिर स्थापित करने की विनती की। तब चीन में ताओ धर्म का प्रचलन था और ताओ मतावलम्बियों ने इस नवीन धर्म का विरोध किया। परीक्षा के लिए दोनों धर्मों के ग्रन्थों को सम्राट के सामने अग्नि में फेंका गया। ताओ धर्मग्रन्थ जल गए, किन्तु बौद्ध धर्मग्रन्थ अक्षुण्ण रहे। इसके बाद ही सन् ७६ में Wutai में प्रथम बौद्ध मन्दिर Xiantong Temple की स्थापना हुई।

एक समय Wutai में ३६० मन्दिर थे, वर्तमान में इनकी संख्या मात्र ५० रह गई है। यहाँ वर्तमान में ५० मठ के अलावा गुफाएँ, पहाड़ियाँ और अन्य धार्मिक स्थल हैं। Wutai के लगभग मध्य भाग में प्रसिद्ध स्तूप 'Sarira' है, जिसमें भगवान बुद्ध के अवशेष हैं। यहाँ गुयेन्यिन

सहित अन्य बोधिसत्वों के अलावा मंजुश्री की पूजा-अर्चना की जाती है।

सम्पूर्ण तीर्थक्षेत्र शान्त और निस्तब्ध है। चौड़े रास्ते, विभिन्न सुविधाएँ, नई इमारतें, सुन्दर परिवहन और यात्रियों के लिए आवश्यक सुविधाओं से सम्पन्न इस तीर्थक्षेत्र की यात्रा आनन्ददायक है। हिमाच्छादित पर्वत, झीलें और उसके आस-पास कलात्मक ढंग से निर्मित टेढ़े-मेढ़े रास्ते, पुष्प-उद्यान, शिलाखण्ड-उद्यान, नागफनी-उद्यान, सुव्यवस्थित रोपस्थली – दिखने में मनोहर और आह्लादकारी हैं। शहर में होने के बावजूद भी इसका परिवेश शान्त है और चारों ओर फैले मन्दिरों में और भी अधिक शान्ति है। इन स्थानों पर अधिक समय तक ध्यान करना सचमुच में एक सुन्दर अवसर है।

पोटाला पैलेस – तिब्बत के राजा सोंग्सटन गम्पो के द्वारा प्रसिद्ध पोटाला महल का निर्माण ६३७ ई. में उनकी राजधानी लासा में हुआ था। इस मजबूत महल का क्षेत्रफल १,४०,००० वर्गमीटर है और यह ३०० मीटर की ऊँचाई तक स्थित है। १९३१ ई. में Gendum Drup की प्रथम दलाई लामा के रूप में घोषणा के बाद यह स्थान परवर्ती दलाई लामाओं की बैठक रहा है। यहाँ श्रद्धालु जन पोटाला महल की निरन्तर दण्डवत परिक्रमा करते हुए देखे जाते हैं। इनमें से कुछ लोग मन्दिर के सामने निरन्तर विशिष्ट क्रम से मन्त्रोच्चार करते हैं, जिसका आरम्भ खड़े होकर हाथ ऊँचा करते हुए और अन्त दण्डवत् प्रणाम में होता है। इस तरह प्रात: छह बजे से दोपहर तक करने का विधान माना जाता है ! इस क्षेत्र में अनेक मठ विद्यमान हैं। इनमें से एक उच्च-स्तरीय विद्या केन्द्र वाला सेरा मठ है, जो वाद-विवाद सत्रों के लिए प्रसिद्ध है।

Yungang Grottoes – दतोंग में स्थित युंग्यांग ग्रॉटोस (गुफाएँ) एलोरा गुफाओं के समान हैं, केवल इनकी गहराई बहुत अधिक नहीं है। जब बौद्ध धर्म इस क्षेत्र में उत्तरी Silk Route द्वारा आया, तब इन गुफाओं का

निर्माण-कार्य ४६० ई. में उतरीय Wie राजवंश के संरक्षण में आरम्भ हो गया था। यहाँ पर २५२ गुफाएँ और ५१,००० से अधिक बुद्ध की बड़ी और छोटी मूर्तियाँ हैं। यह नक्काशियाँ बुद्ध, बोधिसत्व और बुद्ध के जीवन की झाकियों को प्रदर्शित करती हैं। यद्यपि एलोरा और इन गुफाओं का निर्माण कार्य एक ही काल में हुआ है, तथापि

एलोरा की तुलना में यहाँ की नक्काशियाँ बहुत जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं। इसका कारण यह है कि एलोरा गुफाएँ बेसाल्ट चट्टानों से निर्मित हैं, जो ठण्डे लावा से निर्मित volcanic चट्टानें हैं, जबकि मृदु बालुकाश्म (sandstone) वाली युंग्यांग गुफाएँ cemented grains की घनीकरण प्रक्रिया और उसके उत्तरोतर स्तरों के घनीभूत प्रभाव से बनी हुई हैं, इसलिए वे मृदु और जीर्ण-शीर्ण **सम्भावित** हैं।

चीन के सभी तीर्थ-क्षेत्रों में एक बात की ओर ध्यान जाता है कि यहाँ कूड़ा, गीलापन, गन्दगी का लेश मात्र नहीं है । यद्यपि ये स्वच्छ, आधुनिक और सुसज्जित तकनीकी प्रणाली से सम्पन्न हैं, तथापि इनकी प्राचीन शैली वैसे ही अक्षुण्ण रखी गयी है। इनमें से कुछ स्थान तो अत्यन्त रमणीय हैं, जैसे सुन्दर तटों वाली झीलें, शिलाखण्डों से निर्मित कृत्रिम गुफाएँ, छोटे-मोटे पुल, सैर-सपाटे के लिए टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी, ऊँचे स्थानों पर जाने के लिए केबल-कार और नगर-निगम परिवहन की बहुतायत – और ये सभी एक उन्नत आध्यात्मिक परिवेश के आकर्षक सौन्दर्य के साथ हैं !

स्थानाभाव के कारण कुछ अन्य मुख्य तीर्थ-स्थानों की चर्चा हम यहाँ नहीं कर रहे हैं, जैसे निंग्बो में अशोक मन्दिर, हेंग्जोऊ में (३२८ ई. में भारतीय संन्यासी द्वारा संस्थापित) लिंग्यिन मठ, Wuxi में लिंग्शान बौद्ध वण्डरलैण्ड (बौद्ध-धर्म का वैभवपूर्ण प्रदर्शन), सेरा मठ (तिब्बत में गेलुपा विश्वविद्यालय मठ), Chongqing के पास में Fengdu Diyu इत्यादि। इन सभी केन्द्रों में भारतीय शब्दावली एवं विचारधारा तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति देखी जाती है।

संक्षिप्त विवरण और उपसंहार

लेखक ने अपनी प्रत्येक ३-४ सप्ताह की पाँच चीन यात्राओं में ४० तीर्थ-स्थान तथा ६० ऐतिहासिक और सांस्कृतिक केन्द्रों का दर्शन किया। निम्नलिखित निष्कर्ष लेखक के प्रत्यक्ष अनुभव, पर्यवेक्षण और उनके द्वारा लिए गए फोटों के आधार पर दिया जा रहा है।

हमने देखा कि चीन ने हाल में ही अपना आधुनिकीकरण किया है। यहाँ की इमारतें सुसज्जित और सुन्दर हैं। पैदल-मार्ग, अन्य मार्ग एवं प्रसाधन उत्तम स्थिति में अथवा नए दिखाई देते हैं। उपहार-गृह, होटलें स्वच्छ-सुन्दर हैं, जिसमें आधुनिक रीति से रसोई, व्यंजन सूची-प्रदर्शन, परोसना और बिल-भुगतान इत्यादि है। यहाँ की कुछ बहुउद्देशीय दुकानें (Malls) अमेरिका से भी अधिक भव्य हैं। कुछ स्थानों में सुविधाओं के अतिरिक्त आधुनिकता और वैभवता भी स्पष्ट दिखाई देती है। सार्वजनिक स्थानों, रेलवे-स्टेशन और बड़ी दुकानों में यन्त्रचालित सीढ़ियाँ (escalators) देखी जाती हैं। लम्बी दूरी वाली बसें (गाँवों में चलने वाली भी) लगभग नई दिखती हैं। केबल कार भी नई दिखती हैं। यहाँ के रेलवे-स्टेशन और बस-स्टेशन पाश्चात्य देशों के समान हैं और कुछ तो हवाई-अड्डों की तरह दिखते हैं। पुलिस, रेल-निरीक्षक, बस-चालक, टेक्सी-चालक के वेश-परिधान, कार्य-पद्धति और व्यावसायिक-प्रणाली विकसित देशों के समान हैं। सम्पन्न देशों की तरह चीन में जंगल और पहाड़ियों पर मनोरंजन-सैर के लिए रास्ते होते हैं। ये रास्ते टहलने, शारीरिक स्वस्थता और आमोद के लिए रहते हैं। प्रत्येक स्थान पर सूचना-पट्ट (sign boards) रहते हैं और इनमें से कोई भी सूचना-पट्ट आपको जंग लगा हुआ, मुड़ा हुआ अथवा बेकार स्थिति में नहीं मिलेगा।

यहाँ सुव्यवस्थित वृक्षारोपण, सजाई हुई झाड़ियाँ केवल शहरों में ही नहीं, अपितु मुख्यमार्ग एवं लम्बी दूरी वाले जनपथ पर भी देखी जाती हैं। बहुत बार आपको इनमें लम्बी दूरी तक फैले फूल भी दिखाई देंगे। इन सबका रख-रखाव करना – जैसे पानी देना, कटाई-छँटाई करना और खाद देना, यह सचमुच एक आश्चर्य का विषय है।

यद्यपि लेखक ने इस कार्य के लिए आधुनिक मशीनें देखी हैं, तो भी मानवीय इच्छा और प्रबन्धन, सौन्दर्य और सौन्दर्यीकरण के लिए तीव्र आग्रह, इसमें महत्वपूर्ण

भूमिका निभाते हैं।

भारत के साथ इसकी तुलना करने पर जो एक अन्य अन्तर दिखाई देता है, वह है – अनुशासन के प्रति सर्वसामान्य आदर और नियम-पालन में जागरुकता का भाव। लेखक ने कहीं भी पंक्तिबद्ध खड़े लोगों को एक-दूसरे को ठेलते अथवा धक्का-मुक्की करते नहीं देखा। यातायात अपने आप अनुशासनबद्ध चलती रहती है। यहाँ सर्वत्र हमें उत्कृष्ट सेवाएँ प्राप्त होती हैं, यहाँ तक कि सरकारी कर्मचारियों से भी !

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि –

(१) विश्व में २० में से १४ लम्बे पुल चीन में हैं, जिसमें १६४ कि.मी सर्वाधिक लम्बा पुल डन्यांग-कुन्शान भी चीन में है (भारत में सबसे लम्बा पुल ९.९ कि.मी. वाला Bangalore Elevated Tollway है)।

(२) २००८ में निर्मित विश्व का सबसे बड़ा विद्युत-उत्पादक केन्द्र Three Gorges Dam यीचिंग में है। यह २२ गीगावॉट ऊर्जा उत्पन्न करता है।

(३) Three Gorges Dam में विश्व की सबसे बड़ी लिफ्ट है, जो तैरते हुए जहाज को पानी के साथ उठाती है और बाँध के पार ले जाती है। इसका कार्य लगभग पूरा हो रहा है।

(४) कुछ देशों में शीघ्रगामी रेलवे के निर्माण कार्य के लिए चीन को अनुबन्ध प्राप्त हुए हैं।

(५) चीन मीडिया ने १३,००० कि.मी. तक विस्तारित द्रुतगामी रेलमार्ग की घोषणा की है, जो चीन, रशिया, केनेडा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को जोड़ेगा।

(६) चीनी वैज्ञानिक प्रति घण्टे ६००० कि.मी. चलने वाली ट्रेन बनाने की योजना में लगे हुए हैं (प्रति घण्टे १००० कि.मी. चलने वाली ट्रेन का नमूना ३ से ६ वर्ष में पूर्ण करने का प्रकल्प है)।

(७) ऐसे एक तन्त्र के बारे में सोचा जा रहा है कि ट्रेन के प्लेटफॉर्म पर खड़े रहने के बजाय प्लेटफॉर्म का ही कुछ भाग गतिमान होकर चलती ट्रेन से यात्रियों को प्लेटफॉर्म तक स्थानान्तर करेगा। इससे ट्रेन प्लेटफॉर्म पर रुकने की अपेक्षा अपनी गति से आगे बढ़ती रहेगी।

(८) चीनी कम्पनी ने पनामा कॅनल के बृहत् विकल्प के निर्माण कार्य की घोषणा की है, जो २०१५ में समीपस्थ निकाराग्वा देश में शुरू हो जाएगा।

(९) एक विशाल उँची बस (straddle bus) जिसके चक्के रास्ते के दोनो किनारों पर चलेंगे और साधारण ट्रेफिक बस के अन्दर से जा सकेगी, ऐसा वाहन तैयार करने का प्रकल्प चीन ने आरम्भ किया है।

चीन देश ने निस्सन्देह अत्यधिक प्रगति की है और विकास की ओर लम्बे डग भरे हैं। हमें उनसे प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। हमें स्वयं से यह प्रश्न पूछना होगा कि, 'हम भी क्यों नही इतनी प्रगति कर सकते?' चीन का अनुभव हमारी शिक्षा का एक अंग बन जाना चाहिए। चीन का उदाहरण हमें गहरी निद्रा, लम्बी थकान और निष्क्रियता से झकझोर देना चाहिए।

सर्वोपरि, भारत के पास सहस्त्रों वर्षों का और कई गुना अधिक समुज्जवल, भव्य और गौरवमय अतीत है। हमारे पास एक महान विरासत है; हमारी अक्षयनिधि, हमारी पैतृक-सम्पत्ति – इस प्राचीन विरासत के वेग को कोई रोक नहीं सकता, यद्यपि यह सुप्तप्राय प्रतीत हो रही है। यह सुप्त शक्ति पुन: एक तरंग के समान उठेगी। आधुनिक क्रान्तदर्शी स्वामी विवेकानन्द ने १८८७ में रामनाद में भविष्यवाणी की थी, 'हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर से सो भी नहीं सकती। कोई बाह्य शक्ति अब इसे दबा नहीं सकती।'

किन्तु हमें इसके लिए कठिन परिश्रम करना होगा। पुन: इस यात्रा-संस्मरण का उपसंहार करते हुए हम स्वामजी की शक्तिप्रद और प्रेरणादायी वाणी को यहाँ उद्धृत करते हैं, 'मेरे भाइयो ! हम सभी को कठिन परिश्रम करना होगा ! अब सोने का समय नहीं है। हमारे कार्यों पर भारत का भविष्य निर्भर है। देखिए वह तत्परता से प्रतीक्षा कर रही है। वह केवल सो रही है। उसे जगाइए, और पहले की अपेक्षा और भी गौरवमण्डित और अभिनव शक्तिशाली बनाकर भक्तिभाव से उसे उसके चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दीजिए।' ○○○

अपने हृदय में मनाएँ दिवाली

अनिल भटनागर, नई दिल्ली

'सुनु री आली, आई दिवाली' यह लोक गीत दिवाली के उत्साह और उंमग को ही प्रकट करता है। बूढ़े-बच्चे, गरीब-धनी, सभी नए-नए वस्त्र धारण करने, मिठाइयाँ खाने और पटाखे छोड़ने के लिये उत्सुक दिखाई देते हैं। सब जगह खुशियाँ व उल्लास भर देता है दिवाली का त्यौहार।

इस उल्लास का मूल कारण है अयोध्यावासियों की वह उमंग जो भगवान श्रीराम के चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात् अयोध्या-आगमन पर उमड़ी थी। जैसे ही भरतजी को पता चला कि भगवान श्रीराम सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ आ रहे हैं, तब वे लोगों के साथ मंगल गायन करते, बाजे बजाते श्री नन्दिग्राम से चले। सारी प्रजा पुष्पों की वर्षा करती हुई आनन्द से नाचने लगी। सब जगह आनन्दोत्सव छा गया। श्रीमद्भागवत के (९/१०/४२) श्लोक में शुकदेवजी इसी प्रसन्नता में वर्णन कर रहे हैं –

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ।
उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ।।

सर्वाधिक आनन्द हुआ श्रीभरत जी को। वे १४ वर्षों से एक तपस्वी का जीवन यापन कर रहे हैं। सामान्य आहार लेते हैं, वल्कल पहनते हैं, पृथ्वी पर डाभ बिछाकर सोते हैं, उन्होंने जटाएँ बढ़ा रखी हैं। अतः अपने प्रियतम को देखते ही प्रेम के उद्रेक से भरतजी का हृदय गद्गद् हो गया, नेत्रों में आँसू छलक आये और वे भगवान के चरणों पर गिर पड़े।

उन्होंने प्रभु के सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। नेत्रों से आँसू की धारा बहती जा रही थी। भगवान श्रीराम ने अपने दोनों हाथों से पकड़कर बहुत देर तक श्रीभरतजी को हृदय से लगाए रखा। भगवान के नेत्र-जल से भरतजी का स्नान हो गया। इसके बाद सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ भगवान श्रीरामजी ने ब्राह्मण और पूजनीय गुरुजनों को नमस्कार किया।

भरतजी ने भगवान की पादुकाएँ लीं, विभीषण ने श्रेष्ठ चँवर, सुग्रीव ने पंखा और हनुमानजी ने श्वेत छत्र ग्रहण किया। शत्रुघ्नजी ने धनुष और तरकस, सीताजी ने तीर्थों के जल से भरा कमण्डल, अंगद ने सोने का खड्ग और जाम्बवन्त ने ढाल ले ली। इन सबके साथ भगवान पुष्पक विमान पर विराजमान हो गए, चारों ओर यथास्थान पूज्य माताएँ बैठ गयीं, बंदीजन स्तुति करने लगे। श्रीमद्भागवत (९/१०/४५) में शुकदेवजी कह रहे हैं –

पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ।
विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ।।

अर्थात्, हे परीक्षित उस समय पुष्पक विमान पर भगवान श्रीराम की ऐसी शोभा हुई, मानों ग्रहों के साथ चन्द्रमा उदय हो रहे हों।

जब शुकदेवजी जैसे परमज्ञानी भी इस दिवाली पर भावोन्मत्त हो जाते हैं, तो भक्तहृदय श्रीतुलसीजी का कहना ही क्या? वे भाव विभोर होकर गा रहे हैं –

कौसल्यादि मातु सब मन आनन्द अस होइ ।
आयउ प्रभु श्रीअनुज जुत कहन चहत अब कोई ।।
दधि दुर्बा रोचन फल फूला ।
नव तुलसी दल मंगल मूला ।
भरि भरि हेम थारा भामिनी ।
गावत चलिं सिंधुगामिनी ।।
अवधपुरी प्रभु आवत जानी ।
भई सकल सोभा कै खानी ।।
बहइ सुहावन त्रिबिध समीरा ।
भई सरजू अति निर्मल नीरा ।।
राका ससि रघुपति पुर सिंधु देखि हरषान ।
बढयों कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान ।।

(उत्तराकाण्ड १,२,३,)

आइये, हम सब भी दिवाली के शुभ अवसर पर अपने मानसिक नयनों से भगवान श्रीराम-सीता-लक्ष्मण जी की दिव्य झाँकी के दर्शन करें और अयोध्यावासियों के साथ इस महोत्सव में सम्मिलित हो जाएँ। अपने हृदय को अयोध्या बना लें, ताकि प्रभु विराजमान हो सकें। आदि-रामायण के रचयिता वाल्मीकिजी ने स्वयं ही हँसकर आमन्त्रण दिया और गोस्वामीजी भी दे रहे हैं –

सुनुह राम अब कहऊँ निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता ।।

(शेष भाग अगले पृष्ठ पर)

शिक्षा प्राप्त कर उसे आत्मसात् करें

बोध कथा

एक मूर्तिकार ने मिट्टी की दो सुन्दर कठपुतलियाँ बनाईं और उन्हें लेकर राजधानी के चौराहे पर बेचने के लिए रखा। आने-जानेवाले लोग कठपुतलियों की सुन्दरता देखकर बहुत प्रसन्न होते, किन्तु ये बहुत मँहगी होंगी, ऐसा सोचकर केवल देखकर ही चले जाते। किसी ने उनका मूल्य नहीं पूछा। कुछ देर बाद उधर से राजा आ रहे थे। सुन्दर कठपुतलियों को देखकर उन्होंने उनका मूल्य पूछा। मूर्तिकार ने एक कठपुतली को उठाकर कहा – यह एक हजार रुपये की है तथा दूसरी तीन रुपए की है। दोनों कठपुतलियाँ एक समान सुन्दर थीं। राजा को मूल्य सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा – दोनों समान सुन्दर होकर भी दोनों के मूल्य में इतना अन्तर क्यों है? मूर्तिकार ने कहा – इस कठपुतली के कान में तिनका डालने पर वह सीधे भीतर चला जाता है और दूसरी के कान में तिनका डालने पर दूसरे कान से बाहर निकल जाता है। इसलिये एक का मूल्य कम और एक का अधिक है। राजा ने इसका रहस्य पूछा। उसने कहा –

इससे यह शिक्षा मिलती है कि सारी शिक्षा प्राप्त कर उसे अपने अन्तःकरण में समाहित कर लें, तो वह लाभदायक होती है। जो शिक्षा प्राप्त कर उसे आत्मसात् न कर उसे इस कान से उस कान बाहर निकाल देता है, उसका सुनना, न सुनना समान है। राजा कठपुतलियों में निहित गूढ़ शिक्षा जानकर आश्चर्यचकित हो गया। ○○○

(प्रेषक – स्वामी व्रजनाथानन्द)

(पिछले पृष्ठ का शेष भाग)

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।
भरहि निरन्तर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुं गृह रूरे।।
लोचन चातक जिन्ह करि राखे।
रहहिं दरस जलघन अभिलाषे।।
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी।
रूप बिंदु जल होहिं सुखारी।।
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक।
बसहु बंधु सिय सह रघुनायक।।
जसु तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु।
मुक्ताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियं तासु।।

(अयोध्याकाण्ड/१२८) ○○○

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य
अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

गुरुरेव सदानन्दसिन्धौ निर्मग्नमानसः।
पावयन्वसुधां सर्वां विचचार निरन्तरः।।५७७।।

अन्वय – सदानन्दसिन्धौ निर्मग्नमानसः निरन्तरः गुरुः एव सर्वां वसुधां पावयन् विचचार।

अर्थ – ब्रह्मानन्द के समुद्र में निमग्न चित्तवाले, समस्त द्वैत भावों से रहित गुरुदेव भी समस्त पृथ्वी को पवित्र करते हुए विचरण करने लगे।

इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्मलक्षणम्।
निरूपितं मुमुक्षूणां सुखबोधोपपत्तये।।५७८।।

अन्वय – मुमुक्षूणां सुखबोध-उपपत्तये आचार्यस्य शिष्यस्य संवादेन आत्मलक्षणं निरुपितं इति।

अर्थ – मुक्ति के इच्छुकों (मुमुक्षुओं) को सुगमतापूर्वक आत्मबोध कराने हेतु गुरु-शिष्य-संवाद के माध्यम से आत्मतत्त्व का यह निरूपण सम्पन्न हुआ।

हितमिदमुपदेशमाद्रियन्तां विहितनिरस्तसमस्तचित्तदोषाः।
भवसुखविरताः प्रशान्तचित्ताः श्रुतिरसिका यतयो मुमुक्षवो ये।।५७९।।

अन्वय – विहित-निरस्त-समस्त-चित्तदोषाः, भव-सुख-विरताः, प्रशान्त-चित्ताः, श्रुतिरसिकाः, यतयः ये मुमुक्षवः इमं हितं उपदेशं आद्रियन्ताम्।

अर्थ – जो लोग वेद आदि शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट साधनाओं के द्वारा चित्त के दोषों से मुक्त हो गये हैं, जिन्हें संसार के सुखों से विरक्ति हो गयी है, जो प्रशान्त चित्तवाले हैं, जो वेदान्त की श्रुतियों का रस लेने में समर्थ हैं, ऐसे मुक्तिकामी साधकगण इस कल्याणकारी उपदेश का आदर करें।

संसाराध्वनि तापभानुकिरणप्रोद्भूतदाहव्यथा-
खिन्नानां जलकांक्षया मरुभुवि भ्रान्त्या परिभ्राम्यताम्।
अत्यासन्नसुधाम्बुधिं सुखकरं ब्रह्माद्वयं दर्शय-
त्येषा शङ्करभारती विजयते निर्वाणसंदायिनी।।५८०।।

अन्वय – संसार-अध्वनि ताप-भानु-किरण-प्रोद्भूत दाहव्यथा-खिन्नानां जलकांक्षया मरुभुवि भ्रान्त्या परिभ्राम्यताम्, अति-आसन्न-सुधा-अम्बुधिं सुखकरं अद्वयं ब्रह्म दर्शयति एषा निर्वाण-संदायिनि शङ्कर-भारती विजयते।

अर्थ – संसार-मार्ग के त्रिविध ताप-रूपी सूर्य-किरणों से उद्भूत दाह की पीड़ा से कातर लोग जल की इच्छा से भ्रान्तिवश मरुभूमि-रूपी संसार में भ्रमण करते रहते हैं। उनके अति निकट स्थित सुधा-सागर रूपी सुखकर अद्वय ब्रह्म का दर्शन कराने तथा मुक्ति प्रदान करनेवाली श्री शंकराचार्य की इस वाणी की सर्वदा जय हो।

इति श्रीमत्परमहंस-परिव्राजकाचार्य-गोविन्द-भगवत्-पूज्यपाद-शिष्य श्रीमच्छशंकर-भगवत्कृतो विवेकचूडामणिः समाप्तः।।

पूजा और समर्पण : एक दृष्टि ऐसी भी

रेखाराम साहू, रायपुर

हम अपने दैनिक जीवन में अपने द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्यों को निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिए अपने-अपने इष्ट अथवा आराध्य देवता की पूजा-उपासना करते हैं। चोर-डाकू और स्मगलर भी अपने कार्यों को पूरा करने के लिए पूजा करते हैं। किन्तु पूजा तभी सफल होती है, जब पूजा समर्पण की भावना से की जाती है। पूजा ही क्यों, कोई भी कार्य तभी सिद्ध होता है, जब उस कार्य को तन-मन से समर्पित होकर किया जाता है। जैसे कोई टी.वी. देख रहा है। उस समय तनिक भी बाहरी आवाज उसे अच्छी नहीं लगती, क्योंकि वह पूरे समर्पण से देखता है। उसी प्रकार लगन तथा समर्पण से की गई पूजा और आराधना की गुहार इष्टदेव तक पहुँच जाती है। ऐसी पवित्रात्मा द्वारा की गई पूजा-प्रार्थना परमात्मा सुनते हैं।

पूजक को अपने पूज्य इष्ट के बारे में विधिवत जानकारी कर उनकी पूजा करनी चाहिए। बिना जाने-समझे की गई क्रिया मात्र पूजा नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में अपने इष्ट देवता के साथ-साथ वृद्ध सज्जनों का भी सम्मान करना चाहिए एवं उनमें पूज्यदृष्टि रखनी चाहिए।

इसी प्रकार समर्पण शब्द की व्युत्पत्ति होती है – सम + अर्पण। अर्थात् सम्यक् रूप से अर्पण करना। यानि स्वयं को इष्ट के चरणों में अपने को पूर्ण रूप से निवेदन कर देना, अर्पित कर देना, न्यौछावर कर देना, बलिदान कर देना। अपने मन को पूर्णत: इष्ट में संनिविष्ट कर देना। किसी भी कार्य में मन को पूर्ण एकाग्र कर अर्पित हो जाना समर्पण है। किसी भी कार्य को एकाग्र तथा समर्पण भाव से करने पर वह अवश्य फलीभूत होता है।

अपने मन को एकाग्र करके कार्य अथवा पूजा करने से अवश्य निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति होती है। विद्यार्थी अपने मन को एकाग्र कर अध्ययन कार्य करते हैं, तो उन्हें अवश्य सफलता मिलती है। कवि हरिवंश राय बच्चन भी लिखते हैं – मेहनत करने वाले की कोशिश बेकार नहीं होती। लगन से कारज करे तो कभी हार नहीं होती।

पूजा शब्द का अर्थ केवल देवी-देवता की प्रतिमा तक ही सीमित नहीं हैं। अपितु पूजा का अर्थ काफी व्यापक है। गीता में कर्म को यज्ञ और पूजा कहा गया है। जब हम किसी भी कार्य को समर्पण, लगन, प्रेम भाव से करेंगे, तो वह पूजा हो जाएगा। चोरी, डकैती आदि अपराध कितनी भी एकाग्रता और लगन से किया जाय, वह पूजा नहीं बन सकता। केवल सत्कर्म ही पूजा बनेंगे। मन्दिर में भगवान के साथ-साथ हम मानव रूपी ईश्वर की भी पूजा-भावना से सेवा करें। दीन-दुखियों की सेवा करना, भटके को राह दिखना, प्यासे को पानी व भूखे को भोजन खिलाना, ये सभी पूजा बन जाएँगे। डॉक्टर का अपने रोगियों की सेवा उनके लिए पूजा है। दुकानदार का अपने ग्राहकों की संतुष्टि पूजा है। यदि कार्यालय का चपरासी घण्टों पूजा करे, किन्तु जब जनता अपने कार्यों को लेकर उनके पास जाए और वे उन्हें घुमाने लगें, उनसे पैसे ऐंठने लगें, तो वह उनकी सच्ची पूजा नहीं होगी। पटवारी घंटों पूजा करें और किसानों को गुमराह कर पैसे ऐंठने लगें, तो वह पूजा नहीं पाप है। जन-हितैषी कार्य ही पूजा है।

हमारे धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि माता-पिता की पूजा करो। इसका अर्थ यह नहीं कि माता-पिता को अगरबत्ती जलाकर उनके सामने घुमाएं। वास्तव में माता-पिता का सम्मान और सेवा करना ही उनकी पूजा है। माता-पिता के वृद्ध होने पर उन्हें आवश्यक सामग्री लाकर देना उनकी वास्तविक पूजा है।

इसके अतिरिक्त हमारे हिन्दू समाज में विभिन्न पर्वों पर देवी-देवताओं की पूजा-आराधना की जाती है। जैसे – शिवरात्रि पर्व पर भगवान शंकर की, नवरात्रि पर्व पर माँ दुर्गा की तथा दीपावली पर्व पर माँ लक्ष्मी की। हिन्दू परम्परा में चल व अचल संपत्ति को लक्ष्मी के रूप में माना-जाता है। अचल संपत्ति अर्थात् जमीन, चल संपत्ति अर्थात रुपया-पैसा। दिवाली पर्व पर रुपयों-पैसों के रूप में धन की देवी लक्ष्मी की पूजा की जाती है। पूजा का अर्थ सम्मान करना भी होता है। अत: दीपावली पर्व पर जुआ न खेलें। माँ लक्ष्मी का सम्मान करें। सबसे प्रेम और सौहार्द से मिलें। गरीबों को दान करें। गरीब बच्चों को वस्त्र, पुस्तक-पटाखें आदि वितरित करें, तब नर-नारायण की वास्तविक पूजा होगी। ○○○

समाचार और सूचनाएँ

राजकोट आश्रम में नवनिर्मित 'विवेकानन्द प्रकाशन विभाग' का उद्घाटन

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी वागीशानन्दजी महाराज ने राजकोट के रामकृष्ण आश्रम में २९ अगस्त, २०१५ को नवनिर्मित 'विवेकानन्द प्रकाशन विभाग' का उद्घाटन किया। राजकोट आश्रम ने गुजराती में प्रकाशन सेवाकार्य १९२८ में प्रारम्भ किया था। वर्तमान में इस प्रकाशन विभाग द्वारा रामकृष्ण-विवेकानन्द-वेदान्त साहित्य से सम्बन्धित २२० से अधिक पुस्तकें उपलब्ध हैं। इसके अलावा गुजराती मासिक पत्रिका 'श्रीरामकृष्ण ज्योत' भी यहाँ से प्रकाशित की जाती है।

तिरुपति में रामकृष्ण मिशन के नए शाखा-केन्द्र का शुभारम्भ

आन्ध्रप्रदेश और भारत के प्रसिद्ध तीर्थस्थान तिरुपति में रामकृष्ण मिशन के नए शाखा-केन्द्र का शुभारम्भ हुआ। विगत कई वर्षों से रामकृष्ण सेवा समिति के नेतृत्व में वहाँ के स्थानीय भक्तों द्वारा सेवाकार्य चलाए जा रहे थे।

पण्डरपुर में 'रामकृष्ण प्रार्थना मन्दिर' एवं 'साधु-निवास' का उद्घाटन

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल पण्डरपुर में श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द भावप्रचार समिति के प्रांगण में २३ अगस्त, २०१५ को 'रामकृष्ण प्रार्थना मन्दिर' और 'साधु-निवास' का उद्घाटन रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी श्रद्धेय स्वामी दिव्यानन्दजी महाराज के करकमलों द्वारा हुआ। इस समारोह में पुणे आश्रम के अध्यक्ष, स्वामी श्रीकान्तानन्द, मुम्बई आश्रम के अध्यक्ष, स्वामी सर्वलोकानन्द और औरंगाबाद आश्रम के अध्यक्ष स्वामी विष्णुपादानन्द ने रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से सम्बन्धित विषयों पर प्रवचन दिए।

रामकृष्ण मिशन, **लखनऊ** के अस्पताल में नवनिर्मित चिकित्सकीय प्रयोगशाला और टेलीमेडिसिन विभाग का उद्घाटन रामकृष्ण संघ के सह-संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी प्रभानन्द जी महाराज के करकमलों द्वारा २० जुलाई को हुआ।

रामकृष्ण संघ के सह-संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी वागीशानन्द जी महाराज ने **मेदिनीपुर** (पं. बंगाल) आश्रम में प्राथमिक विद्यालय की नवनिर्मित इमारत 'स्वामी सुबोधानन्द स्मृति भवन' का उद्घाटन ९ अगस्त को किया।

रामकृष्ण मठ, **कोयम्बतूर** में बहु-उद्देशीय सभागृह, 'सारदा आरंगम्' का उद्घाटन २९ अगस्त को हुआ।

रामकृष्ण मठ, **चेन्नई** के विवेकानन्दर इलम के प्रांगण में नवनिर्मित साधु एवं कर्मचारी भवन का उद्घाटन १२ अगस्त को हुआ।

बाढ़ राहत कार्य

पश्चिम बंगाल में अतिवृष्टि और बाढ़ के कारण अनेक स्थान क्षतिग्रस्त हो गए हैं और लाखों लोग इससे प्रभावित हुए हैं। रामकृष्ण संघ के १४ शाखा-केन्द्रों ने इन स्थानों में राहत कार्य आरम्भ किया है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

१) **आँटपुर** आश्रम ने २३,६०० लोगों को भोजन कराया। इसके अलावा हुगली और हावड़ा जिले के १४० गाँवों के १७,६९१ परिवारों में ६१,५५० कि.ग्रा. चिउड़ा, २६३२ कि.ग्रा. शक्कर, २ लाख हेलोजन टेबलेट्स और २०१८ तालपत्री ३० जुलाई से २० अगस्त के बीच बाँटे।

२) **बेलघरिया** आश्रम ने ३१ जुलाई को बर्दवान जिले के साहापुर गाँव में १०० कि.ग्रा. चिउड़ा और २५ कि.ग्रा. शक्कर बाँटी। आश्रम ने ५ से ९ अगस्त को नदिया जिले के नवद्वीप अंचल के ३६१८ परिवारों को १५४० कि.ग्रा. सोया चंक, ११,२०० कि.ग्रा. चिउड़ा, २२०० कि.ग्रा. शक्कर, बिस्कुट के ४७ कार्टन, २२५ कि.ग्रा. दूध-पावडर, ४०० कि.ग्रा. ब्लीचिंग पावडर और १७३ कि.ग्रा. चूने का वितरण किया।

३) **चण्डीपुर** आश्रम ने पूर्व मेदिनीपुर जिले के ३१५ परिवारों को १० से १४ अगस्त के बीच २६४० बिस्कुट पैकेट, ३०० साड़ी, ७० धोती, ३०० प्लास्टिक शीट्स और ३०० कि.ग्रा. ब्लीचिंग पावडर का वितरण किया।

४) **गौरहाटी** आश्रम ने हुगली जिले के आरामबाग क्षेत्र के २ गाँवों के ११३ परिवारों को ३०० कि.ग्रा. चावल, १०० कि.ग्रा. ब्लीचिंग पावडर, ४०० कि.ग्रा. लाईम पावडर, ४४ साड़ी और ५५ तालपत्री बाँटी।

इसके अलावा **इच्छापुर, जयरामबाटी, कामारपुकुर, नओरा, नरेन्द्रपुर, रहड़ा, सारदापीठ, सारगाछी, शिक्रा-कुलीनग्राम, तमलुक** आदि ने भी राहत कार्य किए। ○○○